रिपोर्ट करने योग्य

भारत के उच्चतम न्यायालय में

आपराधिक अपीलीय क्षेत्राधिकार

2022 की आपराधिक अपील संख्या 1768

वर्ष 2022 की विशेष अनुमति याचिका आपराधिक संख्या- 9609 से उत्पन्न @2019 की डायरी संख्या 22814)

देवेंद्र नाथ सिंह अपीलकर्ता (ओं)

बनाम्

बिहार राज्य और अन्य उत्तरदाता (ओं)

निर्णय

दिनेश माहेश्वरी, न्यायमूर्ति

विलंब माफ कर दिया गया। अनुमति मंजूर की गई।

2. इस अपील में चुनौती दिनांक 10.09.2018 के आदेश को दी गई है, जैसा कि 2016 के आपराधिक विविध संख्या 649 में पटना में न्यायिक उच्च क्षेत्राधिकार द्वारा पारित किया गया था।

2. 1 दंड प्रक्रिया संहिता, १९७३[1], की धारा ४८२ के तहत कथित याचिका वर्तमान अपील के प्रत्यर्थी नं. ३ द्वारा, एसीजेएम, बाढ़, जिला पटना[2] द्वारा २०१२ के बाढ़ पुलिस स्टेशन मामला नं. ११५ में पारित २१. ०६. २०१४ के आदेश के विरुद्ध दाखिल की गई थी, जिसके द्वारा, विद्वान दंडाधिकारी ने भारतीय दंड संहिता, १८६०[3] की धारा ४०९, ४६७, ४६८ और ४२० के तहत् अपराधों का संज्ञान. वर्ष २०१०-११ और २०११-१२ के दौरान बिहार राज्य खाद्य और नागरिक आपूर्ति निगम[4] के गोदाम से रु. १६, ९९, ६४८/- मूल्य के स्टॉक के दुर्विनियोजन के आरोपों पर प्रत्यर्थी संख्या -३ के विरुद्ध संज्ञान लिया था .

3. प्रत्यर्थी नं. ३ द्वारा पूर्वोक्त याचिका में उच्च न्यायालय के समक्ष प्रस्तुतियों का मुख्य मुद्दा यह था कि वह निगम का केवल चतुर्थ श्रेणी कर्मचारी था और यह कि वर्तमान अपीलकर्ता द्वारा 'पूरा खेल' खेला गया था,

1'सीआरपीसी', संक्षेप में।

2इसमें इसके पश्चात् 'मजिस्ट्रेट' के रूप में निर्दिष्ट किया गया है।

3संक्षेप में, 'भा. दं. सं.

4इसके पश्चात् 'निगम' के रूप में निर्दिष्ट किया गया है।

जो जिला प्रबंधक का पद धारण कर रहा था.इस संबंध में, पहली सूचना रिपोर्ट[5] का हिस्सा बनने वाली लेखा परीक्षा रिपोर्ट की सामग्री पर व्यापक रूप से भरोसा किया गया।

4. उच्च न्यायालय ने, वर्तमान प्रत्यर्थी नं. ३ की ओर से की गई प्रस्तुतियों पर ध्यान देने के बाद, आश्चर्य व्यक्त किया कि निगम के तत्कालीन जिला प्रबंधक (अर्थात्, वर्तमान अपीलकर्ता), जो अंततः अवैधता के लिए जिम्मेदार था, को मुखबिर, अर्थात्, वरिष्ठ उप समाहर्ता-सह-जिला प्रबंधक (गोदाम के प्रभारी) द्वारा क्लीन चिट दी गई थी.यह भी देखा गया कि वर्तमान प्रत्यर्थी नं. ३, एक चतुर्थ श्रेणी कर्मचारी, को गोदाम में तैनात नहीं किया जा सकता था और उसे वर्तमान अपीलार्थी को बचाने के लिए 'बलि का बकरा' के रूप में मामले में अभियुक्त बनाया गया था.

4. 1 ऐसा कहने के बाद, उच्च न्यायालय ने दंडाधिकारी को पुलिस को अपीलकर्ता के खिलाफ आरोपों के संबंध में दण्ड प्रकिया संहिता की धारा 173 (8) के संदर्भ में मामले की आगे जांच करने और तीन महीने की अवधि के भीतर रिपोर्ट मांगने का निर्देश देने का निर्देश दिया।तथापि, न्यायालय ने, वर्तमान प्रत्यर्थी नं. ३ के खिलाफ संज्ञान लेते हुए आक्षेपित आदेश में हस्तक्षेप करने के प्रति अपनी अनिच्छा व्यक्त की और आरोप तैयार करते समय प्रत्यर्थी नं. ३ को सभी बिंदुओं को उठाने की स्वतंत्रता देते हुए याचिका का निपटान किया, जिसका उच्च न्यायालय के निर्देशों के अनुसार, अपीलार्थी के खिलाफ आगे की जांच में उभरने वाली सामग्री पर विचार करने के बाद विद्वान दंडाधिकारी द्वारा निर्णय लिया जाना था.

5. दिनांक 10.09.2018 के आक्षेपित आदेश को इस प्रकार विस्तारित रूप से पुनः प्रस्तुत किया जा सकता हैः- -

> "यह याचिका दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के तहत दायर की गई है, जिसमें 21.6.2014 को पटना के एसीजेएम बाढ़ द्वारा बरह पुलिस स्टेशन के 2012 के मामले संख्या 115 में पारित आदेश को रद्द करने की मांग की गई है, जिसके द्वारा विद्वान दंडाधिकारी ने याचिकाकर्ता के खिलाफ थाना की धारा 409,467,468 और 420 के तहत अपराध के लिए संज्ञान लिया है। याचिकाकर्ता और राज्य के विद्वान अधिवक्ताओं को सुना। याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया है कि याची संक्षेप में 'निगम' के लिए बिहार राज्य खाद्य और नागरिक आपूर्ति निगम लिमिटेड में केवल चतुर्थ श्रेणी कर्मचारी था.यह पूरा खेल डीएन सिंह द्वारा खेला गया था, जो जिला प्रबंधक थे। यह रिपोर्ट भी एफआईआर का हिस्सा है और अनुलग्नक-2 के रूप में संलग्न है।गोदाम के वरिष्ठ उपायुक्त-सह-जिला प्रबंधक (प्रभारी) रहे मुखबिर ने तत्कालीन जिला प्रबंधक डी. एन. सिंह के खिलाफ कोई मामला दर्ज नहीं कराया

5संक्षेप में, 'एफआईआर'।

है, जिन्होंने गबन करने में पूरा खेल खेला था।एफ. आई. आर. केवल याचिकाकर्ता के खिलाफ दर्ज की गई है जो चतुर्थ श्रेणी कर्मचारी था और जिसे डी. एन. सिंह द्वारा परिपत्र और सरकारी नीति के खिलाफ गोदाम का प्रभारी बनाया गया था, जो ऑडिटर द्वारा प्रस्तुत ऑडिट रिपोर्ट में भी विस्तार से आया था.पुलिस ने इस याचिकाकर्ता के खिलाफ पूर्वोक्त एफआईआर के आधार पर आरोप पत्र प्रस्तुत किया और आरोप पत्र के आधार पर याचिकाकर्ता के खिलाफ संज्ञान लिया गया है. यह न्यायालय वास्तव में यह जानकर आश्चर्यचकित है कि निगम के तत्कालीन जिला प्रबंधक, जो अंततः ऐसी सभी अवैधताओं के लिए जिम्मेदार थे, को मुखबिर द्वारा क्लीन चिट दी गई थी।उन्हें इस मामले में आरोपी नहीं बनाया गया था।याची, चतुर्थ श्रेणी कर्मचारी होने के कारण, तत्कालीन जिला प्रबंधक, अर्थात् डी एन सिंह द्वारा प्रभारी सहायक गोदाम प्रबंधक के रूप में तैनात किया गया था, हालांकि वह इस पद पर तैनात होने का हकदार नहीं था.उन्हें आरोपी बनाया गया है, उन्हें गोदाम के तत्कालीन जिला प्रबंधक डी. एन. सिंह की चमड़ी को बचाने के लिए बलि के बकरे के रूप में आरोपी बनाया गया है । एसीजेएम, बाढ़, पटना को निर्देश दिया जाता है कि वह धन के दुरुपयोग के आरोप के संबंध में तत्कालीन जिला प्रबंधक डीएन सिंह के खिलाफ आरोप के संबंध में सीआरपीसी की धारा 173 (8) के प्रावधान के संदर्भ में पुलिस को मामले की आगे फिर से जांच करने और याचिकाकर्ता को सरकार के परिपत्रों और निर्देशों के खिलाफ सहायक गोदाम प्रबंधक के रूप में नियुक्त करने का निर्देश दे।दंडाधिकारी पुलिस को निर्देश देगा कि वह धन के गबन के पूरे खेल में तत्कालीन जिला प्रबंधक श्री डी. एन. सिंह की भूमिका के संबंध में कानून के अनुसार फिर से जांच पूरी करे और विद्वान दंडाधिकारी द्वारा आदेश पारित करने की तारीख से तीन महीने की अवधि के भीतर उनके समक्ष रिपोर्ट प्रस्तुत करे। वर्तमान में, यह न्यायालय याचिकाकर्ता के संबंध में आक्षेपित आदेश में हस्तक्षेप करने के लिए इच्छुक नहीं है, जिसके द्वारा पुलिस द्वारा प्रस्तुत आरोप पत्र के आधार पर उसके खिलाफ संज्ञान लिया गया है. इस आपराधिक विविध याचिकातदनुसार निपटान किया जाता है।याची को आरोप की विरचना के समय, वर्तमान आवेदन में उठाए गए सभी बिंदुओं को उठाने की स्वतंत्रता दी गई है, जिन पर तत्कालीन जिला प्रबंधक डी एन सिंह के विरुद्ध अभिकथन के संबंध में आगे की जांच के दौरान आने वाली सामग्री पर विचार करने के बाद विधि के अनुसार निचले न्यायालय द्वारा विचार और निपटान किया जाएगा."

6. पूर्वोक्त आदेश पर अपीलकर्ता द्वारा इस आधार पर प्रश्न उठाया जाता है कि जांच जांच एजेंसी/अधिकारी का विशेषाधिकार है और दंडाधिकारी को जांच करने के लिए ऐसी शक्तियों का उपयोग करने के लिए कोई जनादेश जारी नहीं किया जा सकता है।यह भी प्रस्तुत किया गया है कि आक्षेपित आदेश प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का सीधा उल्लंघन है क्योंकि उच्च न्यायालय द्वारा अपीलार्थी को सुनवाई का कोई अवसर नहीं दिया गया था.

6. 1.विस्तार से बताते हुए, अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता ने तर्क दिया है कि उच्च न्यायालय ने, धारा 482 दंड प्रक्रिया संहिता के तहत अपनी शक्तियों का प्रयोग करते हुए, दंडाधिकारी को पुलिस को अपीलकर्ता की भूमिका की जांच करने का निर्देश देने के लिए एक विशिष्ट निर्देश जारी नहीं कर सकता था, जिसका न तो एफआईआर में नाम था और न ही आरोप पत्र किया गया था और उच्च न्यायालय के समक्ष वह एक पक्ष भी नहीं था।संविधान पीठ के निर्णय के संदर्भ में धर्म पाल और अन्य बनाम्हरियाणा राज्य और अन्यः(2014) 3 एससीसी 306 और अभिनंदन झा और अन्य बनाम भारत संघ और अन्य वाले मामले में अन्य निर्णय।दिनेश मिश्राः(1967) 3 एस. सी. आर. 668 और विनुभाई हरिभाई मालवीय और अन्य बनाम भारत संघ और अन्य, ए. आई. आर. 1967 (3) एस. सी. आर. 668.गुजरात राज्य और अन्यः(2019) 17 एससीसी 1, के मामले मे संविधान पीठ के निर्णय के संदर्भ में विद्वान वकील ने प्रस्तुत किया है कि इस न्यायालय द्वारा सिद्धांत तय किए गए हैं कि सीआरपीसी की योजना के अनुसार, इस बारे में राय बनाने के लिए कि क्या किसी व्यक्ति पर मुकदमा चलाया जाना है या नहीं, इसे थाना के प्रभारी अधिकारियों पर छोड़ दिया गया है और इस न्यायालय ने आगे अभिनिर्धारित किया है कि एक मामले में जहां दंडाधिकारी की राय है कि पुलिस द्वारा प्रस्तुत अंतिम रिपोर्ट असंतोषजनक है, तो वह द. प्र. सं. की धारा 156 (3) के तहत अपनी शक्तियों का उपयोग कर सकता है और पुलिस को निर्देश दे सकता है कि वह पुलिस की विपरीत राय के बावजूद, सीआरपीसी की धारा 190 (1) (सी) के तहत आगे की जांच करे या सीधे संज्ञान ले।हालांकि, विद्वान वकील के अनुसार, प्रत्यर्थी नं. ३ द्वारा दायर याचिका पर विचार करते समय उच्च न्यायालय द्वारा एक विशेष तरीके से इस तरह की शक्ति का प्रयोग करने के लिए निर्देश जारी नहीं किए जा सकते थे. विद्वान वकील ने मदन मोहन बनाम राजस्थान राज्य और अन्यः(2018) 12 एससीसी 30, के निर्णय का भी उल्लेख किया है जिसमें इस न्यायालय ने कहा है कि एक वरिष्ठ न्यायालय किसी भी अधीनस्थ न्यायालय को किसी पक्ष द्वारा दायर किए गए किसी आवेदन पर विशेष आदेश पारित करने का आदेश देने के लिए निर्देश जारी नहीं कर सकता है।

6. 2 अपीलार्थी के विद्वान वकील ने भी पॉपुलर मुथैया बनाम राज्यः(2006) 7 एस. सी. सी. 296 में निर्णय पर भरोसा किया है और प्रस्तुत करते हैं कि इसी तरह के एक मुद्दे पर विचार करते हुए, जहां उच्च न्यायालय ने, भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के तहत दोषसिद्धि के खिलाफ एक अपील में, जांच एजेंसी को अपीलकर्ता की जांच करने के लिए निर्देश जारी किए थे, जिसे सुनवाई के लिए नहीं भेजा गया था, इस

न्यायालय ने कहा कि उच्च न्यायालय अपनी अंतर्निहित शक्तियों का उपयोग करते हुए ऐसा कोई निर्देश जारी नहीं कर सकता था, क्योंकि किसी अपराध की जांच पुलिस की एक वैधानिक शक्ति थी और यह राज्य को तय करना था कि वह किसी आरोपी के खिलाफ कार्रवाई करना चाहता है या नहीं।यह पाया गया कि उच्च न्यायालय किसी विशेष दृष्टिकोण से या किसी विशेष एजेंसी द्वारा मामले की जांच करने के लिए निर्देश जारी नहीं कर सकता है और इसलिए, यह अपीलार्थी के अभियोजन का निर्देश देने में अपने अधिकार क्षेत्र से बाहर चला गया.उसमें, आक्षेपित निर्णय को रद्द कर दिया गया, और मामले को अपीलार्थी को सुनने के बाद नए सिरे से विचार करने के लिए उच्च न्यायालय को भेज दिया गया.

6. 3 प्रस्तुतियों के दूसरे अंग में, अपीलार्थी के विद्वत वकील ने तर्क दिया है कि उच्च न्यायालय को आक्षेपित निर्देश जारी करने से पहले अपीलार्थी को सुनवाई का अवसर देना चाहिए था.विद्वत अधिवक्ता तर्क देगा कि यह कसौटी कि क्या कोई व्यक्ति दंडाधिकारी द्वारा पारित आदेश को चुनौती देने के लिए सुनवाई के अवसर का हकदार है, इस बात पर निर्भर नहीं है कि क्या ऐसे व्यक्ति के पास प्रथमतः दंडाधिकारी मजिस्ट्रेट द्वारा सुने जाने के अधिकार का उन कार्यवाहियों के, जिनमें सुनवाई की मांग की जाती है, परिणामों पर विचार करके स्वतंत्र रूप से सुनवाई की हकदारी का निर्धारण किया जाना चाहिए और सुनवाई का दावा किया जा सकता है जहां किसी व्यक्ति का पर्याप्त अधिकार प्रभावित होगा।विद्वान परामर्शदाता ने डिवाइन रिट्रीट केन्द्र बनाम केरल राज्य और अन्य:(2008) 3 एससीसी 542 के निर्णय का उल्लेख किया है, जिसमें इस मुद्दे पर विचार करते हुए कि क्या उच्च न्यायालय उसे सुने बिना अपीलार्थी के खिलाफ जांच का निर्देश देने वाला एक न्यायिक आदेश पारित कर सकता था, इस न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि किसी भी न्यायालय द्वारा कोई भी न्यायिक आदेश उस व्यक्ति को सुनवाई का उचित अवसर प्रदान किए बिना पारित नहीं किया जा सकता था, जिसके इस तरह के आदेश से प्रभावित होने की संभावना थी। डब्ल्यू. एन. चड्ढाः1993 सप्लीमेंट (4) एस. सी. सी. 260 के मामले में यह मत व्यक्त करते हुए कि उन्होंने कहा कि किसी व्यक्ति या संस्था के खिलाफ जांच या जांच का निर्देश देने वाले न्यायिक आदेश को चुनौती देने वाले मामले में यह फैसला लागू नहीं होगा।विद्वान वकील ने मनहरीभाई मुलजीभाई ककाड़िया और अन्य बनाम भारत संघ और अन्य, एआईआर 1995 एससी 131 शैलेशभाई मोहनभाई पटेल और ओआरएस (2012) 10 एससीसी 517 में इस न्यायालय के, 3 न्यायाधीशों की पीठ के फैसले पर भी भरोसा किया है जिसमें यह पाया गया कि किसी अपराध को अंजाम देने वाले संदिग्ध या आरोपी को दं. प्र. सं. की धारा 203 के तहत शिकायत को खारिज करने के आदेश के खिलाफ उच्च न्यायालय या सत्र न्यायाधीश के समक्ष दायर आपराधिक पुनरीक्षण में सुनवाई का अधिकार है, जैसा कि पुनरीक्षण में वरिष्ठ न्यायालय द्वारा पारित आदेश में शिकायत को खारिज करने के आदेश को पलट दिया गया है] यह परिणामस्वरुप, शिकायत को बहाल करेगा और इसलिए, अभियुक्त पर प्रतिकूल प्रभाव डालेगा।

6.3.1 यह तर्क दिया गया है कि अपीलार्थी की अनुपस्थिति में, उच्च न्यायालय के पास इस तथ्य पर ध्यान देने का कोई अवसर नहीं था कि विस्तृत विभागीय कार्यवाही के बाद उसे पहले से ही सभी आरोपों से बरी कर दिया गया था और इसलिए, आगे की जांच के लिए निर्देश इस मामले में पूरी तरह से अनुचित थे.

6. 4.अपीलार्थी के विद्वान वकील ने यह भी तर्क दिया है कि उच्च न्यायालय विनय त्यागी बनाम इरशाद अली और अन्य वाले मामले में इस न्यायालय के कथन को ध्यान में रखते हुए इस मामले में आगे की जांच या फिर से जांच का निर्देश नहीं दे सकता था:(2013) 5 एस. सी. सी. 762, जिसमें यह अभिनिर्धारित किया गया था कि नए सिरे से/नए सिरे से किए गए अन्वेषण को विरल रूप से और असाधारण परिस्थितियों में निर्देशित किया जाना चाहिए, जैसे कि जहां पहले से की गई जांच दुर्भावना से दूषित है।

6. 5.अपीलार्थी के विद्वान वकील प्रस्तुत करेंगे कि दंडाधिकारी स्वयं, संज्ञान लेते हुए, वर्तमान अपीलार्थी के खिलाफ कार्यवाही कर सकता था, यदि वह संतुष्ट होता कि अभिलेख पर सामग्री किसी भी हद तक अपीलार्थी को फंसाती, लेकिन, जब दंडाधिकारी ने अपीलार्थी के खिलाफ कार्यवाही नहीं करने का विकल्प चुना था, तो उच्च न्यायालय अपीलार्थी के खिलाफ मामले की आगे फिर से जांच करने के निर्देश जारी नहीं कर सकता था, हालांकि किसी न्यायालय के लिए यह हमेशा खुला है कि यदि उस संबंध में साक्ष्य सामने आता है, तो वह दं. प्र. सं. की धारा 319 के चरण में मुकदमे के लिए नहीं भेजे गए व्यक्ति के खिलाफ कार्यवाही करे।

7. प्रत्यर्थी नं. ३ के विद्वान वकील ने इस दलील के साथ आक्षेपित आदेश का समर्थन किया है कि अपीलार्थी एक उच्च श्रेणी का अधिकारी था और ऐसा प्रतीत होता है कि उसने आंतरिक जांच में अन्य अधिकारियों को प्रभावित किया है ताकि उसे क्लीन चिट दी जा सके.एफआईआर के आधार प्रश्नगत 31 मई, 2012 की लेखा प्रश्नगतीक्षा रिपोर्ट की एक प्रति रिकॉर्ड प्रश्नगत रखी गई है और प्रस्तुतियों के दौरान इसका व्यापक रूप से उल्लेख किया गया है।

7. 1 विद्वान वकील ने इसकी टिप्पणियों को रेखांकित किया है विनुभाई हरिभाई मालवीय (ऊपर) के मामले में न्यायालय ने कहा कि जांच और जांच का उद्देश्य, चाहे वह पुलिस द्वारा हो या दंडाधिकारी द्वारा, यह सुनिश्चित करना है कि जिन लोगों ने वास्तव में अपराध किया है, उनके खिलाफ मामला दर्ज किया जाए और जिन लोगों ने अपराध नहीं किया है, उन्हें मुकदमे का सामना नहीं करना पड़े।इन और अन्य टिप्पणियों प्रश्नगत कि ऐसी आवश्यकताएं भारत के संविधान के अनुच्छेद 21 की भावना से संबंधित हैं, विद्वान वकील ने तर्क दिया है कि खाद्यान्नों के विघटन से संबंधित अपराधों, जो समाज के आर्थिक रूप से कमजोर वर्गों के लिए कठिनाई पैदा करते हैं, की न केवल वास्तविक अपराधियों के खिलाफ मामला दर्ज करने के लिए बल्कि ऐसे अपराध की पुनरावृत्ति को रोकने के लिए भी उचित जांच करने की आवश्यकता है।

7. 2 विद्वान वकील तर्क देंगे कि इस मामले की अजीब परिस्थितियों में, जब यह पाया गया कि अपीलकर्ता के खिलाफ कोई उचित जांच नहीं की गई थी, जो गोदाम का जिला प्रबंधक और समग्र प्रभारी था, तो उच्च न्यायालय ने सही ढंग से निर्देश जारी करने के लिए अपनी अंतर्निहित शक्तियों का उपयोग किया है ताकि मामले में आगे और उचित जाँच सुनिश्चित किया जा सके। इस न्यायालय के निर्णय पर भरोसा करते हुए पंजाब राज्य बनाम केंद्रीय जांच ब्यूरो और अन्यः(2011) 9 एससीसी 182, में विद्वान वकील ने तर्क दिया है कि दं. प्र. सं. की धारा 482 के तहत, उच्च न्यायालय के पास आगे की जांच और फिर से जांच करने का आदेश देने की शक्ति है और यह कि आक्षेपित आदेश पर कोई भी अवैधता या न्यायिक त्रुटियां नहीं लगाई जा सकती है.विद्वान वकील ने आगे प्रस्तुत किया है कि जब उच्च न्यायालय के पास आगे की जांच या सीधे पुनः जांच का निर्देश देने की शक्ति है, तो वह विद्वान दंडाधिकारी को, जो मामले की जांच कर रहा है, निर्देश जारी करके भी ऐसा कर सकता है.

7. 3.विद्वान वकील ने आगे प्रतिवाद किया है कि दंडाधिकारी, जिसके समक्ष एक अंतिम रिपोर्ट प्रस्तुत की जाती है, के पास रिपोर्ट से भिन्न होने और आगे की जांच का आदेश देने की शक्ति और प्राधिकार है.तथापि, दंडाधिकारी के पास इस शक्ति का अस्तित्व स्वतः प्रभाव से यह अर्थ नहीं निकालता है कि उच्च न्यायालय अपनी अंतर्निहित अधिकारिता का प्रयोग करते हुए भी किसी समुचित मामले में आगे अन्वेषण का निदेश नहीं दे सकता है, जब उसके ध्यान में यह आता है कि किसी मामले में अन्वेषण उचित रूप से नहीं किया गया है।

7.4 यह भी तर्क दिया गया है कि यद्यपि उच्च न्यायालय द्वारा अंतर्निहित शक्तियों का नियमित रूप से उपयोग नहीं किया जा सकता है और इसका प्रयोग केवल चरम सीमा के मामलों में ही किया जा सकता है, लेकिन वर्तमान मामले में, जब प्रश्नगत अपराध के व्यापक रूप से समाज के लिए परिणाम होते हैं, तो उच्च न्यायालय को अपनी अंतर्निहित शक्तियों का उपयोग करने में गलती नहीं की जा सकती है, जो फिर भी, न्यायोचित हैं। विद्वान वकील ने विशेष रूप से पॉपुलर मुखिया में पूर्वोक्त निर्णय के पैराग्राफ 30 का उल्लेख किया है और आगे उन्होंने नीतू कुमार नगाइच v राजस्थान राज्य और ओआरएसः(2020) 16 एससीसी 777 के मामले पर भरोसा किया है जिसमें इस न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया है कि जब किसी संवैधानिक न्यायालय का यह समाधान हो जाता है कि अन्वेषण वस्तुनिष्ठ रीति से नहीं किया गया है या इस प्रकार से नहीं किया गया है कि किसी व्यक्ति को विधि से भागने में सहायता की जा सके तो वह नए सिरे से अन्वेषण करने का निदेश दे सकता है जिससे कि आपराधिक न्याय की हत्या को रोका जा सके।

7. 5.जहां तक इस तर्क का संबंध है कि आक्षेपित आदेश पारित करने से पहले अपीलार्थी को कोई सूचना जारी नहीं की गई थी, विद्वान वकील ने डब्लू. एन. चड्ढा (पूर्वोक्त) में इस न्यायालय के निर्णय के संदर्भ में तर्क दिया है कि, जांच के स्तर पर, अभियुक्त को ऐसी कोई सूचना जारी करने की आवश्यकता नहीं है.विद्वान वकील ने विभिन्न अन्य निर्णयों का भी उल्लेख किया है और प्रस्तुत किया है कि डब्ल्यू. एन. चड्ढा में कथित निर्णय का इस न्यायालय द्वारा लगातार पालन किया गया है.विद्वत वकील यह भी प्रस्तुत करेंगे कि यद्यपि

निर्दिष्ट निर्णय पीड़ित द्वारा दायर आवेदनों में दिए गए थे और सह-अभियुक्त द्वारा नहीं, लेकिन अंतर्निहित सिद्धांत वही है कि अभियुक्त को जांच के चरण में सुनवाई की आवश्यकता नहीं है.विद्वान वकील यह भी प्रस्तुत करेंगे कि यदि अंतिम रिपोर्ट प्राप्त होने पर, विद्वान दंडाधिकारी अभियुक्त को पूर्व सूचना दिए बिना आगे की जांच का आदेश दे सकता था, तो उच्च न्यायालय, अपनी अंतर्निहित अधिकारिता के उपयोग में, जो, यदि कुछ भी हो, बहुत व्यापक है.

7. 6 तर्कों के अंतिम चरण में, प्रत्यर्थी नं. १ के विद्वान वकील ने यह भी प्रस्तुत किया है कि इस न्यायालय द्वारा अंतरिम स्थगन मंजूर करने से पहले, अपेक्षित जांच शुरू की गई थी और आर्थिक अपराध इकाई को स्थानांतरित कर दिया गया था, जहां अपीलकर्ता के खिलाफ आरोप प्रथम दृष्टया सही पाए गए हैं, लेकिन इस न्यायालय के स्थगन आदेश के मद्देनजर आगे की कार्रवाई स्थगित कर दी गई थी।हालांकि, अब तक की गई जांच से यह स्पष्ट होता है कि उच्च न्यायालय द्वारा व्यक्त किए गए संदेह पूरी तरह से उचित पाए गए हैं। इसलिए, विद्वान वकील विकल्प में प्रस्तुत करेंगे कि, किसी भी मामले में, पहले से की गई जांच को संरक्षित किया जाना चाहिए ताकि अपीलार्थी जैसे वास्तविक अपराधी कानून की प्रक्रिया से बच न सकें.

8. पूर्वोक्त प्रस्तुतियों के अलावा, यह उल्लेखनीय है कि यद्यपि, प्रत्यर्थी नं. २-निगम की ओर से, उत्तर प्रस्तुतियां अनिवार्य रूप से इस आशय की हैं कि विभागीय कार्यवाहियों में, वर्तमान अपीलार्थी के खिलाफ आरोप साबित नहीं किए गए थे, लेकिन तब, प्रत्यर्थी नं. १-राज्य की ओर से, प्रत्यर्थी नं. १-राज्य की ओर से, विस्तृत प्रस्तुतियां दी गई हैं, जो कि अपीलार्थी के मामले का खंडन करती हैं.

8. 1 यह, अन्य बातों के साथ-साथ, प्रत्यर्थी राज्य की ओर से प्रस्तुत किया गया है कि वर्तमान मामले के अलावा, 2012 की बाढ़ थाना मामला संख्या ११५ होने के कारण, एक और मामला भी था, प्रत्यर्थी नं. ३ के साथ-साथ वर्तमान अपीलार्थी के खिलाफ भी २०१२ की बिक्रम थाना मामला संख्या १२९ और उच्च न्यायालय द्वारा पारित आदेश के बाद, वर्तमान मामले में जांच भी आर्थिक अपराध इकाई, बिहार द्वारा २०१२ की पूर्वोक्त विक्रम थाना मामला संख्या १२९ के साथ की गई थी.अपीलार्थी की प्रथमदृष्टया संलिप्तता का संकेत देते समय यह भी बताया गया है कि भारतीय दंड संहिता की धारा 409, 420, 468, 471 और 474 के तहत अपराधों के लिए संस्थित 2012 के कथित बिक्रम थाना मामला संख्या 129, वर्तमान अपीलकर्ता के खिलाफ प्रथम दृष्टया मामला मिलने के बाद, अभियोजन की मंजूरी भी प्राप्त कर ली गई है।यह मामला 7.69 करोड़ रुपये के सामान के गबन से संबंधित है।यह प्रस्तुत किया जाता है कि वर्तमान मामले में, अपीलार्थी को इस न्यायालय द्वारा अंतरिम संरक्षण दिए जाने के लिए अभियोजन की मंजूरी प्राप्त नहीं की गई है. राज्य की ओर से दाखिल जवाबी हलफनामे के कुछ अंश इस प्रकार हैंः- -

> “13. वास्तव में, कार्यालय में उत्तराधिकारी जिला प्रबंधक ने भी इस याचिकाकर्ता के खिलाफ विभागीय कार्यवाही आयोजित करने के लिए अवलोकन किया था और

याचिकाकर्ता को निगम के मुख्यालय की अनुमति के बिना प्रमोद रंजन कुमार सिन्हा के खिलाफ कार्रवाई करते हुए पाया गया था।

14. यहां तक कि याचिकाकर्ता को नीचे जाने के मामलों के संबंध में खामोश पाया गया, जिसे इस याचिकाकर्ता द्वारा 11.02.2010 को प्रमोद रंजन सिन्हा नाम के एक चतुर्थ वर्गीय कर्मचारी को मोकामा डिपो से 104.61.650 क्विंटल गेहूं ले जाने वाले ट्रक पर सौंपा गया था, हालांकि, 12.02.2010 को इस ट्रक को पकड़ा गया और इसे कालाबाजारी पाया गया, लेकिन, इस याचिकाकर्ता ने ज्ञान के बावजूद उसे पद से हटाकर नीचे जाने के प्रभारी कर्मचारी के खिलाफ कोई कदम नहीं उठाया और केवल गेहूं का मूल्य कर्मचारी के वेतन से वसूल किया गया।वास्तव में, जिला कार्यालय ने खरीद केंद्रों में अनियमितताओं के बारे में बार-बार सूचित किया है, हालांकि, याचिकाकर्ता ने कोई कदम नहीं उठाया, न ही उसने खरीद केंद्र से परिवर्तन हटाया/नीचे चला गया।

15. वास्तव में यह भी बताया गया है कि विभिन्न अनियमितताओं और ऐसी अनियमितताओं के ज्ञान के बावजूद याचिकाकर्ता ने कुछ अनियमितताओं को रोकने के लिए कोई प्रयास नहीं किया और सुधार के उपाय नहीं किए।

16. उपाय नहीं किए। यह कहा गया है कि जिला प्रबंधक होने के नाते यह इस याचिकाकर्ता की जिम्मेदारी और प्रमुख कर्तव्य था कि वह खाद्यान्न का उठाव करे, उसे स्टोर करे और गिरावट से उचित वितरण सुनिश्चित करे, हालांकि, याचिकाकर्ता ऐसा करने में विफल रहा जिससे इतना बड़ा दुर्विनियोग हुआ।वास्तव में, एसएफसी की रिपोर्ट के अनुसार, यह पाया गया कि इस याचिकाकर्ता द्वारा निरीक्षण/दौरे करने का कोई सबूत नहीं है.

17. जांच के दौरान, जब तत्कालीन सहायक, राधाकांत पासवान, रमाशंकर प्रसाद और ब्रजकिशोर श्रीवास्तव, गवाहों के बयान दर्ज किए गए, तो उन्होंने अभिसाक्ष्य दिया कि याचिकाकर्ता जिम्मेदार था और उसने अपने कर्तव्यों का ठीक से निर्वहन नहीं किया।

18. वास्तव में, वर्तमान आपराधिक मामले के अलावा, याचिकाकर्ता को भारतीय दंड संहिता की धारा 409/420/468/471/474 के तहत संस्थित 2012 के बिक्रम पुलिस स्टेशन केस नंबर 129 के संबंध में एक गैर-एफआईआर आरोपी के रूप में भी आरोपित किया गया है, जो भी एक समान प्रकृति का मामला है.वास्तव में,

इस मामले में, इस याचिकाकर्ता के खिलाफ निगम से 13.01.2012 को अभियोजन की मंजूरी भी प्राप्त की गई है.

19. यह कहा गया है कि वर्तमान मामले में भी उसके खिलाफ सामग्री है, जैसा कि ऊपर कहा गया है, हालांकि, अभियोजन की मंजूरी प्राप्त नहीं की गई है क्योंकि याचिकाकर्ता को अंतरिम संरक्षण प्रदान किया गया है.

20. उपर्युक्त पृष्ठभूमि में, पैरा 1 में दिए गए कथन का विरोध किया जाता है और यह प्रार्थना की जाती है कि आक्षेपित आदेश को बरकरार रखा जाए।"

9. हमने प्रतिद्वंद्वी प्रस्तुतियों पर गंभीरता से विचार किया है और अभिलेख में रखी गई सामग्री को स्कैन किया है।

10. जैसा कि आसानी से देखा जा सकता है, वर्तमान मामले में अपनी विशेषताएं हैं क्योंकि केवल प्रत्यर्थी नं. ३ का नाम प्राथमिकी में था और निगम के गोदाम में खाद्यान्नों के गबन के आरोपों पर आरोप पत्र दाखिल किया गया था।मामले में अपीलार्थी की भूमिका के संबंध में कोई भी जांच नहीं की गई थी.जब प्रत्यर्थी नं. ३ ने भारतीय दंड संहिता की धारा ४०९, ४६७, ४६८ और ४२० के तहत अपराधों का संज्ञान लेते हुए विद्वान दंडाधिकारी द्वारा पारित आदेश पर सवाल उठाने का प्रयास किया, तो उच्च न्यायालय, हालांकि, विद्वान दंडाधिकारी द्वारा इस प्रकार पारित आदेश में हस्तक्षेप करने के लिए अनिच्छुक रहा, लेकिन, दूसरी ओर, उसने आश्चर्य व्यक्त किया कि अपीलार्थी, तत्कालीन जिला प्रबंधक, को मुखबिर द्वारा एक क्लीन चिट दी गई, निगम के एक अन्य अधिकारी और केवल प्रत्यर्थी नं. ३, एक चतुर्थ श्रेणी कर्मचारी, को अभियुक्त के रूप में नामित किया गया था.उच्च न्यायालय ने यह भी कहा कि प्रत्यर्थी नं. ३ को अपीलार्थी की खाल बचाने के लिए 'बलि का बकरा' के रूप में मामले में अभियुक्त बनाया गया था.इसलिए, उच्च न्यायालय ने विद्वान दंडाधिकारी को अपीलार्थी के खिलाफ धन के दुर्विनियोग के आरोपों और सरकार के परिपत्रों और निर्देशों के खिलाफ प्रत्यर्थी नं. ३ को प्रभारी सहायक गोदाम प्रबंधक के रूप में नियुक्त करने के संबंध में सीआरपीसी की धारा १७३ (८) के संदर्भ में आगे की जांच के लिए निर्देश देने का निर्देश दिया."उच्च न्यायालय ने आगे यह मत व्यक्त किया कि लेखा परीक्षा रिपोर्ट में विस्तार से वर्णित धन का दुर्विनियोजन में अपीलार्थी की भूमिका के संबंध में अन्वेषण को पूरा करने के लिए निर्देश दिए जाएँगे। निर्विवाद रूप से, आक्षेपित आदेश उच्च न्यायालय द्वारा उसके समक्ष एक पक्षकार होने के बिना और दंड प्रक्रिया संहिता की धारा ४८२ के तहत अपनी अंतर्निहित शक्तियों का प्रयोग करते हुए पारित किया गया.

10. 1.इस प्रकार, और हमारे समक्ष की गई प्रस्तुतियों को ध्यान में रखते हुए, इस अपील में अवधारण के लिए दो प्रमुख प्रश्न उठते हैंःपहला, इस बारे में कि क्या उच्च न्यायालय ने दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के तहत अपनी अंतर्निहित शक्तियों का प्रयोग करते हुए मजिस्ट्रेट को आगे की जांच का आदेश देने के लिए

निर्देश जारी करना न्यायोचित था, हालांकि, जिस मजिस्ट्रेट के समक्ष आरोप-पत्र दायर किया गया था और जिसने संज्ञान लिया था, उसने ऐसी कोई प्रक्रिया नहीं अपनाई थी और दूसरा, क्या उच्च न्यायालय ने ऐसी कोई प्रक्रिया नहीं अपनाई थी। क्या अपीलार्थी को सुनवाई का अवसर प्रदान किए बिना आक्षेपित आदेश पारित करना न्यायोचित है?

11. इस मामले में दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के अधीन उच्च न्यायालय की अंतर्निहित शक्तियों के प्रयोग के बारे में पहले प्रश्न पर विचार करते समय, हम विधि के सुसंगत उपबंधों के प्रति उपयोगी रूप से निर्देश कर सकते हैं, जिनका आगामी चर्चा में प्रभाव पड़ेगा।

11. 1।दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482, उच्च न्यायालय की अंतर्निहित शक्तियों को बचाती है, जिसके तहत और जिसके तहत इस मामले में आक्षेपित आदेश पारित किया गया है, इस प्रकार हैः-

> "उच्च न्यायालय की अंतर्निहित शक्ति की व्यावृत्तिइस कोड में कुछ भी नहीं है इस संहिता के तहत किसी भी आदेश को प्रभावी बनाने के लिए या किसी भी न्यायालय की प्रक्रिया के दुरुपयोग को रोकने के लिए या न्याय के उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए आवश्यक हो, ऐसे आदेश देने के लिए उच्च न्यायालय की अंतर्निहित शक्तियों को सीमित या प्रभावित करने वाला नहीं समझा जाएगा."

11. 2.यह निर्विवाद है कि दंड प्रक्रिया संहिता की स्कीम के अनुसार, इस बारे में राय बनाने के लिए कि क्या व्यक्ति पर मुकदमा चलाया जाना है, पुलिस स्टेशन के प्रभारी अधिकारी पर छोड़ दिया गया है और जहां मजिस्ट्रेट की राय है कि उसके समक्ष दाखिल रिपोर्ट के रूप में जांच का परिणाम संतोषजनक नहीं है, तो वह धारा 156 (3) और/या 173 (8) दं. प्र. सं. के संदर्भ में भी जांच का आदेश दे सकता है या वह सीधे धारा 190 (1) (सी) के तहत संज्ञान ले सकता है। 11.2.1 है।धारा 156, धारा 173 और धारा 190 सीआरपीसी के प्रासंगिक भाग इस प्रकार हैंः-

> "156. संज्ञेय मामले की जांच करने की पुलिस अधिकारी की शक्ति(1) कोई भी
>
> (1) किसी पुलिस थाने का प्रभारी अधिकारी मजिस्ट्रेट के आदेश के बिना किसी ऐसे संज्ञेय मामले का अन्वेषण कर सकेगा जिसके बारे में ऐसे थाने की सीमाओं के भीतर स्थानीय क्षेत्र पर अधिकारिता रखने वाले न्यायालय को अध्याय 13 के उपबंधों के अधीन जांच करने या विचारण करने की शक्ति होगी।
>
> (2) ऐसे किसी भी मामले में किसी पुलिस अधिकारी की किसी भी कार्यवाही पर इस आधार प्रश्नगत नहीं उठाया जाएगा कि वह मामला ऐसा था जिसकी जांच करने के लिए इस धारा के तहत ऐसा अधिकारी सशक्त नहीं था।

(3) धारा 190 के अधीन सशक्त कोई मजिस्ट्रेट उपर्युक्त अन्वेषण का आदेश दे सकेगा।"

* * * * * * * * * * * *

"173 अन्वेषण पूरा होने पर पुलिस अधिकारी की रिपोर्ट

(1) इस अध्याय के अधीन प्रत्येक अन्वेषण अनावश्यक विलंब के बिना पूरा किया जाएगा।

(2) (i) जैसे ही यह पूरा हो जाता है, थाना का प्रभारी अधिकारी पुलिस रिपोर्ट पर अपराध का संज्ञान लेने के लिए सशक्त मजिस्ट्रेट को राज्य सरकार द्वारा निर्धारित प्रारूप में एक रिपोर्ट भेजेगा, जिसमें कहा जाएगा -

(क) पक्षकारों के नाम

(ख) सूचना की प्रकृति

(ग) उन व्यक्तियों के नाम जो मामले की परिस्थितियों से परिचित प्रतीत होते हैं

(घ) क्या ऐसा प्रतीत होता है कि कोई अपराध प्रतिबद्ध और, यदि हां, तो किसके द्वारा

(ङ) क्या अभियुक्त को गिरफ्तार किया गया है

(च) क्या उसे उसके बंधपत्र पर छोड़ दिया गया है और, यदि हां, तो, – चाहे प्रतिभूतियों के साथ या उनके बिना

(छ) क्या उसे निम्नलिखित के अधीन अभिरक्षा में धारा 170 के तहत अग्रेषित किया गया है,

(ज) क्या भारतीय दंड संहिता (1860 का 45) की धारा 376,376 ए, 376 एबी, 376 बी, 376 सी, 376 डी, 376 डीए, 376 डीबी या धारा 376 ई के तहत किसी अपराध से संबंधित जांच रिपोर्ट संलग्न की गई है।

(ii) अधिकारी, राज्य सरकार द्वारा विहित रीति में, अपने द्वारा की गई कार्रवाई, यदि कोई हो, उस व्यक्ति को भी संसूचित करेगा जिसके द्वारा अपराध के किए जाने से संबंधित सूचना पहले दी गई थी।

* * * * * * * * * * * *

(8) उपधारा (2) के अधीन रिपोर्ट मजिस्ट्रेट को अग्रेषित किए जाने के पश्चात् इस धारा की कोई बात किसी अपराध के संबंध में आगे अन्वेषण को निवारित करने वाली नहीं समझी जाएगी और जहां ऐसे अन्वेषण पर थाने का भारसाधक अधिकारी मौखिक या दस्तावेजी साक्ष्य प्राप्त करता है वहां वह मजिस्ट्रेट को विहित प्ररूप में ऐसे साक्ष्य के संबंध में एक और रिपोर्ट या रिपोर्ट अग्रेषित करेगा और उपधारा (2) से उपधारा (6) के उपबंध, जहां तक हो सके, ऐसी रिपोर्ट या रिपोर्टों के संबंध में वैसे ही लागू होंगे जैसे वे उपधारा (2) के अधीन अग्रेषित रिपोर्ट के संबंध में लागू होते हैं।"

* * * * * * * * * * * *

"190 मजिस्ट्रेटों द्वारा अपराधों का संज्ञान(1) के अध्यधीन इस अध्याय के उपबंधों के अनुसार प्रथम श्रेणी का कोई मजिस्ट्रेट और उपधारा (2) के अधीन इस निमित्त विशेष रूप से सशक्त द्वितीय श्रेणी का कोई मजिस्ट्रेट किसी अपराध का संज्ञान ले सकेगा -

(क) ऐसे तथ्यों की शिकायत प्राप्त होने पर जो ऐसे अपराध का गठन करते हैं

(ख) ऐसे तथ्यों की पुलिस रिपोर्ट पर

(ग) किसी पुलिस अधिकारी से भिन्न किसी व्यक्ति से प्राप्त सूचना पर या उसकी स्वयं की जानकारी पर कि ऐसा अपराध किया गया है.

(2) मुख्य न्यायिक दंडाधिकारी द्वितीय श्रेणी के किसी दंडाधिकारी को ऐसे अपराधों की उपधारा (1) के अधीन संज्ञान लेने के लिए सशक्त कर सकेगा जो उसकी जांच करने या विचारण करने की क्षमता के भीतर हैं।"

11. 3.यह विवाद का विषय नहीं है कि दंड प्रक्रिया संहिता में धारा 190 (1) (ग) के उपबंध की भांति आरोप पत्र में नामजद न किए गए व्यक्तियों के विरुद्ध कार्यवाही करने के लिए मजिस्ट्रेट में विभिन्न प्रक्रमों और विभिन्न शक्तियों की अवधारणा की गई है।इन पहलुओं, अनिवार्य रूप से दंड प्रक्रिया संहिता की सामान्य योजना के सामान्य संचालन के, जैसा कि धरम पाल (उपर्युक्त) में इस न्यायालय की संविधान पीठ के निर्णय में और अभिनंदन झा (उपर्युक्त) के एक अन्य निर्णय में भी रेखांकित किया गया है, वर्तमान मामले के प्रयोजन के लिए अधिक विस्तार की आवश्यकता नहीं है।

12. जैसा कि देखा गया है, वर्तमान मामले की अपनी अनूठी विशेषताएं हैं कि विद्वान दंडाधिकारी ने धारा 156 (3) या धारा 173 (8) या धारा 190 (1) (सी) दं. प्र. सं. के संदर्भ में ऐसी किसी शक्ति का प्रयोग नहीं किया था, लेकिन, उच्च न्यायालय ने, दं. प्र. सं. की धारा 482 के तहत एक याचिका पर विचार करते हुए, निर्देश दिया है. विशेष रूप से अपीलार्थी की भूमिका और उच्च न्यायालय द्वारा शक्ति के इस तरह के प्रयोग प्रश्नगत आगे जांच करने के लिए पुलिस को निर्देश देने के लिए।इस संबंध में, हम उपयोगी रूप से पक्षकारों के विद्वान वकील द्वारा उद्धृत निर्णयों में से प्रासंगिक का उल्लेख कर सकते हैं.

12. 1.विनय त्यागी (उपर्युक्त) के मामले में, इस न्यायालय ने दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के तहत उच्च न्यायालय की शक्तियों के साथ-साथ दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 173 के तहत मजिस्ट्रेट की शक्तियों और 'ताजा जांच' और/या 'आगे की जांच' करने की प्रक्रियाओं के विभिन्न पहलुओं से संबंधित मुद्दों की विस्तृत श्रृंखला पर विचार किया।इस न्यायालय ने निम्नलिखित मत व्यक्त किया और अभिनिर्धारित कियाः-

> “43. इस स्तर पर, हम आपराधिक न्यायशास्त्र के एक और अच्छी तरह से स्थापित सिद्धांत का भी उल्लेख कर सकते हैं कि वरिष्ठ न्यायालयों को संहिता की धारा 482 या भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत आगे की जांच, नए सिरे से या नए सिरे से और यहां तक कि पुनर्जांच का भी निर्देश देने का अधिकार है।"नए सिरे से जाँच और पुनः अन्वेषण" "पर्याय हैं और कानून में उनके परिणाम समान होंगे।"उच्च न्यायालयों को जांच को एक एजेंसी से दूसरी एजेंसी में स्थानांतरित करने की शक्ति भी दी गई है, बशर्ते न्याय के उद्देश्य ऐसी कार्रवाई की मांग करें।निःसंदेह, यह एक स्थापित सिद्धांत भी है कि इस शक्ति का प्रयोग उच्च न्यायालयों द्वारा बहुत कम और बड़ी सतर्कता के साथ किया जाना चाहिए।44. हमने इस मुद्दे पर कुछ विस्तार से विचार-विमर्श किया है कि संहिता की धारा 482 के तहत उच्च न्यायालय की शक्तियां संहिता की धारा 228 के तहत मजिस्ट्रेट की शक्ति की चौड़ाई को प्रत्यक्ष या विवक्षित रूप से नियंत्रित या सीमित नहीं करती हैं।जहां कहीं भी न्यायालय में आरोप पत्र प्रस्तुत किया गया है, यह न्यायालय भी आमतौर पर जांच को फिर से नहीं खोलेगा, विशेष रूप से इसे किसी विशेष एजेंसी को सौंपकर।यह सुरक्षित रूप से कहा जा सकता है और निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि एक उपयुक्त मामले में, जब न्यायालय को लगता है कि पुलिस प्राधिकारियों द्वारा अन्वेषण उचित दिशा में नहीं है और यह कि पूर्ण न्याय करने के लिए और जहां मामले के तथ्य मांग करते हैं, वहां न्यायालय को हमेशा किसी विशेषज्ञ अभिकरण को अन्वेषण सौंपने के लिए स्वतंत्र है।

इन सिद्धांतों को दिशा बनाम गुजरात राज्य[6] , विनीत नारायण बनाम संघ [7]भारत संघ बनाम सुशील कुमार मोदी[8] और रुबाबुद्दीन शेख बनाम गुजरात राज्य[9] में इस न्यायालय के निर्णयों को मंजूरी के साथ दोहराया गया है।

"45. "पुनः अन्वेषण" या "नए सिरे से जांच" का आदेश/निर्देश देने की शक्ति उच्च न्यायालयों के अधिकार क्षेत्र में आती है, वह भी असाधारण मामलों में।"यदि कोई संहिता के प्रावधानों की जांच करता है, तो रिपोर्टों को रद्द करने के लिए कोई विशिष्ट प्रावधान नहीं है, सिवाय इसके कि जांच एजेंसी एक क्लोजर रिपोर्ट दायर कर सकती है (जहां जांच एजेंसी के अनुसार, कोई अपराध नहीं बनता है)।ऐसी रिपोर्ट को भी विद्वान मजिस्ट्रेट द्वारा स्वीकार किया जा सकता है, जो अपने विवेक से ऐसी रिपोर्ट को स्वीकार कर सकता है या नहीं कर सकता है।वैध कारणों से, न्यायालय ऐसी रिपोर्ट को स्वीकार करने से इंकार करके या मामले के अभिलेख और उसके साथ संलग्न दस्तावेजों के आधार पर भी आगे की जांच का निर्देश दे सकता है, अभियुक्त को समन कर सकता है।

* * * * * * * * * * * *

"48. आपराधिक न्यायशास्त्र में" "निष्पक्ष और उचित अन्वेषण" "अभिव्यक्ति का उद्देश्य या महत्व क्या है?"इसका दोहरा उद्देश्य हैःपहला, जांच निष्पक्ष, ईमानदार, न्यायपूर्ण और कानून के अनुसार होनी चाहिए, दूसरा, एक निष्पक्ष जांच पर पूरा जोर सक्षम क्षेत्राधिकार वाली अदालत के समक्ष मामले की सच्चाई को सामने लाने के लिए होना चाहिए।एक बार निष्पक्ष जांच के ये दोहरे प्रतिमान संतुष्ट हो जाने के बाद अदालत के लिए जांच में हस्तक्षेप करने, उसे रद्द करने या किसी अन्य एजेंसी को हस्तांतरित करने की न्यूनतम आवश्यकता होगी।कानून के अनुसार निष्पक्ष और जांच के माध्यम से सच्चाई को सामने लाना अनिवार्य रूप से एक अनुचित, दागदार जांच या झूठे निहितार्थ के मामलों के आधार को निरस्त कर देगा।इस प्रकार, किसी न्यायालय के लिए जांच के भाग्य के बारे में एक विशिष्ट आदेश पारित करना अपरिहार्य है, जो उसकी राय में अनुचित, दागदार और खोजी सिद्धांतों के स्थापित सिद्धांतों का उल्लंघन है।

6(2011) 13 एससीसी 337

7(1998) 1 एससीसी 226:1998 एससीसी (क्री.) 307

8(1996) 6 एससीसी 500

9(2010) 2 एससीसी 200

49. अब, हम एक और महत्वपूर्ण पहलू की जांच कर सकते हैं जो यह है कि धारा 173 (8) के उपबंधों को न्यायालयों और अन्वेषण अभिकरणों द्वारा कैसे समझा और लागू किया गया है।यह सच है कि संहिता की धारा 173 (8) के प्रावधानों में आगे जांच करने या अदालत की अनुमति से पूरक रिपोर्ट दाखिल करने की कोई विशिष्ट आवश्यकता नहीं है, लेकिन जांच एजेंसियों ने न केवल इसे समझा है, बल्कि इसे कानूनी प्रक्रिया के रूप में भी अपनाया है, ताकि अदालत की अनुमति से आगे जांच करने और पूरक रिपोर्ट दाखिल करने के लिए अदालतों की अनुमति ली जा सके।कुछ निर्णयों में अदालतों ने भी इसी तरह का दृष्टिकोण अपनाया है।आगे की जांच करने और/या एक पूरक रिपोर्ट दाखिल करने के लिए अदालत से पूर्व अनुमति लेने की आवश्यकता को संहिता की धारा 173 (8) के प्रावधानों में पढ़ा जाएगा और यह एक आवश्यक निहितार्थ है।कनदेमपोरेनिया एक्सपोजिटों का सिद्धांत इस तरह की व्याख्या की मदद के लिए पूरी तरह से सक्षम होगा जिसे समझा और लंबे समय के लिए लागू किया जाता है और इस प्रचलन, जिसे कानून द्वारा सहयोग मिला है, को व्याख्यात्मक प्रक्रिया के भाग के रुप में स्वीकार किया जाएगा।"

(जोर दिया गया)

12. 2 पंजाब राज्य बनाम सीबीआई (उपर्युक्त) के मामले में, इस न्यायालय को एक याचिका पर विचार करने का अवसर मिला जिसमें सीबीआई को कई एफआईआर से संबंधित जांच सौंपने के उच्च न्यायालय के निर्देशों को चुनौती दी गई थी, जहां प्रत्यर्थी नं. 3 द्वारा उसके पति और कई अन्य व्यक्तियों के खिलाफ बलात्कार के आरोपों में एफआईआर की उत्पत्ति हुई थी।भारत के संविधान के अनुच्छेद 136 के तहत याचिका को खारिज करते हुए और अपील के लिए अनुमति देने से इनकार करते हुए, इस न्यायालय ने निम्नलिखित पैराग्राफों में न्याय के उद्देश्यों को सुरक्षित करने के लिए दं. प्र. सं. धारा 482 के तहत उच्च न्यायालय की शक्ति की विशालता का खुलासा कियाः-

"22. तथापि, दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 में कहा गया है कि दंड प्रक्रिया संहिता की कोई भी बात उच्च न्यायालय की अंतर्निहित शक्तियों को सीमित या प्रभावित करने वाली नहीं समझी जाएगी जो दंड प्रक्रिया संहिता के तहत किसी भी आदेश को प्रभावी बनाने या किसी भी न्यायालय की प्रक्रिया के दुरुपयोग को रोकने के लिए या न्याय के उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए आवश्यक है।इस प्रकार, दं. प्र. सं. के प्रावधान ऐसे आदेश देने के लिए उच्च न्यायालय की अंतर्निहित शक्तियों को सीमित या प्रभावित नहीं करते हैं जो न्यायालय के किसी भी आदेश को प्रभावी बनाने या न्यायालय की किसी भी प्रक्रिया के दुरुपयोग को रोकने के लिए या न्याय के

उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए आवश्यक हो।अतः दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 173 की उप-धारा (8) की भाषा, नए सिरे से जांच या पुनः जांच के लिए दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के तहत आदेश पारित करने के लिए उच्च न्यायालय की अंतर्निहित शक्तियों को सीमित या प्रभावित नहीं कर सकती, यदि उच्च न्यायालय संतुष्ट हो जाता है कि न्याय के उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए इस तरह की नई जांच या पुनः जांच आवश्यक है।

23. हमें श्री धवन द्वारा उद्धृत मिठाभाई पाशाभाई पटेल बनाम गुजरात राज्य[10] वाले मामले में इस न्यायालय की निम्नलिखित टिप्पणियों में इस निष्कर्ष के लिए समर्थन मिलता हैः

> "13. तथापि, यह किसी भी गुत्थी से परे है कि 'आगे अन्वेषण' और 'पुनः अन्वेषण' अलग-अलग स्तर पर है।यह हो सकता है कि एक दी गई स्थिति में एक वरिष्ठ न्यायालय अपनी संवैधानिक शक्ति का प्रयोग करते हुए, अर्थात्, भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 और 32 के तहत, किसी अपराध की जांच कराने और/या किसी अन्य अभिकरण द्वारा आगे अन्वेषण कराने के लिए किसी 'राज्य' को निदेश दे सकता है। पुनः जांच का निर्देश, हालांकि, कानून में निषिद्ध होने के कारण, कोई भी वरिष्ठ न्यायालय आमतौर पर इस तरह का निर्देश जारी नहीं करेगा। रामचन्द्रन बनाम आर. उदयकुमार[11] वाले मामले में न्यायमूर्ति पसायत ने निम्नलिखित मत व्यक्त कियाः

"7. इस समय संहिता की धारा 173 पर ध्यान देना आवश्यक होगा। उपर्युक्त धारा के सादा पठन से यह स्पष्ट है कि संहिता की धारा 173 की उपधारा (2) के तहत जांच पूरी होने के बाद भी, पुलिस को उप-धारा (8) के तहत आगे जांच करने का अधिकार है, लेकिन नई जांच या फिर से जांच नहीं।" अतः, पुनः अन्वेषण और आगे अन्वेषण के बीच एक अंतर विद्यमान है।

15. अन्वेषण अभिकरण और/या न्यायालय केवल संहिता के उपबंधों के अनुसार उन्हें प्रदत्त अपनी अधिकारिता का प्रयोग करते हैं।उच्च न्यायालय के अधीनस्थ न्यायालयों के पास दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के तहत या अन्यथा कोई

10(2009) 6 एससीसी 332

11(2008) 5 एससीसी 413

अंतर्निहित शक्ति नहीं है।अतः, अधीनस्थ न्यायालयों में निहित प्रतिप्रे-ण अधिकारिता का प्रयोग संहिता के चार कोनों के भीतर किया जाना चाहिए।"

24. इस न्यायालय की पूर्वोक्त टिप्पणियों से यह स्पष्ट है कि जांच एजेंसी या दं. प्र. सं. के तहत शक्तियों का उपयोग करने वाले उच्च न्यायालय के अधीनस्थ न्यायालय को दं. प्र. सं. के चार कोनों के भीतर शक्तियों का उपयोग करना होगा और इसका मतलब यह होगा कि जांच एजेंसी आगे की जांच कर सकती है और अधीनस्थ अदालत उस मामले में आगे की जांच का निर्देश दे सकती है जहां दं. प्र. सं. की धारा 173 की उप-धारा (2) के तहत आरोपपत्र दायर किया गया है और इस तरह की आगे की जांच का मतलब नई जांच या फिर से जांच करना नहीं होगा।लेकिन सीआरपीसी की धारा 173 की उप-धारा (8) की ये सीमाएं उस मामले में लागू नहीं होंगी, जहां आरोप पत्र दायर किया गया है, न्याय के उद्देश्यों को हासिल करने के लिए दं. प्र. सं. की धारा 482 के तहत उच्च न्यायालय की निहित शक्तियों का उपयोग किया जाएगा।"

(जोर दिया गया)

12. 3.लोकप्रिय मुथैया (पूर्वोक्त) के मामले में इस न्यायालय के निर्णय को प्रतिद्वंद्वी पक्षों के विद्वत वकील द्वारा उनकी संबंधित दलीलों के समर्थन में संदर्भित किया गया है.इसमें उच्च न्यायालय ने, जबकि भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के अधीन अपराध के अभियुक्त को दंडित करने और दंडित करने के निर्णय और आदेश के विरुद्ध अपनी अपीलीय अधिकारिता का प्रयोग करते हुए यह मत व्यक्त किया कि आरोपित अभियुक्त की दो-सिद्धि के संबंध में विचारण न्यायालय के निर्णय में हस्तक्षेप करने के लिए कोई मामला नहीं बनाया गया था किंतु तब अपराध में अन्य व्यक्तियों को भी अंतर्वलित करने के लिए प्रत्येक स्तर पर साक्ष्य था और अन्वेषण अधिकारियों की ओर से उन्हें अभियुक्त की सरणी से छोड़ना मात्र एक सद्भावपूर्ण त्रुटियां नहीं थी।उच्च न्यायालय ने महसूस किया कि सत्र न्यायाधीश को दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 319 के तहत अपने अधिकार क्षेत्र का इस्तेमाल करना चाहिए था और मामले के संचालन के संबंध में प्रतिकूल टिप्पणियां करते समय, उच्च न्यायालय ने निर्देश दिया कि ऐसे अन्य अभियुक्तों पर मुकदमा चलाया जाए।उच्च न्यायालय ने आगे निर्देश दिया कि राज्य इस बारे में लोक अभियोजक की सलाह लेगा कि किस धारा के तहत उन पर आरोप लगाए जाएंगे और मुकदमा चलाया जाएगा तथा सीबी, सीआईडी मामले को अपने हाथ में लेगी, फिर से जांच करेगी और ऐसे अन्य अभियुक्तों पर मुकदमा चलाएगी।इस न्यायालय के समक्ष प्रश्न अपीलीय अधिकारिता का प्रयोग करते हुए और अभियोजन के लिए प्रस्तावित व्यक्तियों को सुनवाई का अवसर दिए बिना उच्च न्यायालय द्वारा इस प्रकार जारी निदेशों की वैधता और औचित्य के बारे में था।इस पृष्ठभूमि में, इस न्यायालय ने उच्च न्यायालय की इस तरह की शक्तियों की सीमा के साथ-साथ आयाम पर भी प्रकाश डाला

और मामले को नए सिरे से विचार करने के लिए और संबंधित पक्षों को नोटिस देने के बाद, निम्नलिखित का अवलोकन करते हुए और धारण करते हुए उच्च न्यायालय को प्रेषित कियाः

> "29. इस प्रकार उच्च न्यायालय अपनी पुनरीक्षण या अपीलीय शक्ति का प्रयोग करते हुए अपनी अंतर्निहित शक्तियों का प्रयोग कर सकता है। उच्च न्यायालय की अंतर्निहित शक्ति का प्रयोग किया जा सकता है, यह मौलिक और प्रक्रियात्मक दोनों मामलों के संबंध में सामान्य है।
>
> 30. आनुषंगिक या अनुपूरक शक्ति के संबंध में, स्पष्टतः उच्च न्यायालय कार्यवाहियों की प्रकृति का ध्यान रखे बिना अपनी अंतर्निहित अधिकारिता का प्रयोग कर सकता है।यह प्रक्रिया संबंधी प्रतिबंधों से बंधा नहीं हैः
>
> (i) न्याय के हित में स्वप्रेरणा से शक्ति का प्रयोग किया जा सकता है।यदि ऐसी शक्ति को स्वीकार नहीं किया जाता है, तो इससे अभियुक्त के साथ अन्याय भी हो सकता है।
>
> (ii) ऐसी शक्ति का प्रयोग अपीलीय या पुनरीक्षण अधिकारिता के साथ-साथ किया जा सकता है और इसके लिए किसी औपचारिक आवेदन की आवश्यकता नहीं है।
>
> (iii) तथापि, इसमें कोई संदेह नहीं है कि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के अधीन शक्ति असीमित नहीं है।अन्य बातों के साथ-साथ जहां संहिता मौन है, वहां इसका प्रयोग किया जा सकता है, जहां न्यायालय की शक्ति को व्यापक नहीं माना जाता है, या संहिता में कोई विशिष्ट उपबंध है या कानून संहिता की परिधि के भीतर नहीं आता है क्योंकि इसमें एक विशेष कानून लागू करना शामिल है।यह न्यायसंगत रूप से कार्य करता है।इस प्रकार, यह वास्तविक और पर्याप्त न्याय कर सकता है, जिसके लिए केवल यह मौजूद है।
>
> * * * * * * * * * * * *
>
> 46. तथापि, उच्च न्यायालय ने राज्य को राज्य लोक अभियोजक से इस बारे में सलाह लेने का निदेश जारी करना सही नहीं था कि किस धारा के अधीन अपीलार्थी को आरोपित किया जाना है और सी. बी., सी. आई. डी. को मामले को हाथ में लेने और इसमें अपीलार्थी का पुनः अन्वेषण करने और अभियोजन करने का निदेश दिया। ऐसी शक्ति दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के दायरे में नहीं आती है।अपराध की

जांच पुलिस की सांविधिक शक्ति है। राज्य अपने विवेक से किसी भी एजेंसी से जांच करा सकता है जब तक कि कोई असाधारण स्थिति न हो।

* * * * * * * * * * * *

48. उच्च न्यायालय ने आक्षेपित निर्णय पारित करते समय उक्त सिद्धांतों को ध्यान में नहीं रखा।यह हमारे सामने अपीलार्थी के अभियोजन का निर्देश देने में अपने अधिकार क्षेत्र से बाहर गया.इस प्रकार के मामले में, जहां एक वरिष्ठ न्यायालय अपनी अंतर्निहित अधिकारिता का प्रयोग करता है, उसे निर्विवाद रूप से अभियुक्त के अधिकार को छीनने के अंतर्निहित खतरे के बारे में खुद को याद दिलाना चाहिए।उच्च न्यायालय को उक्त अधिकारिता का प्रयोग करने में सावधानी बरतनी चाहिए थी।जब दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 173 की उप-धारा (8) के तहत किसी शक्ति का प्रयोग किया जाता है, तो न्यायालय को आमतौर पर जांच एजेंसी की वैधानिक शक्ति में हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए।यह किसी विशेष दृष्टिकोण से या किसी विशेष एजेंसी द्वारा मामले की जांच करने के लिए निर्देश जारी नहीं कर सकता है।वर्तमान मामले में, उच्च न्यायालय ने न केवल मामले में फिर से जांच करने को कहा था, बल्कि उन गवाहों की जांच करने का भी निर्देश दिया था, जिन्हें अभियोजन पक्ष के गवाहों के रूप में उद्धृत नहीं किया गया था।इसके अलावा अदालत ने अपीलकर्ता के खिलाफ मुकदमा चलाने का निर्देश दिया जो कानून के हिसाब से अनुचित था।

* * * * * * * * * * * *

56. जहां तक उच्च न्यायालय की अंतर्निहित शक्ति का संबंध है, निर्विवाद रूप से उसका प्रयोग बहुत कम करने की आवश्यकता है।"

उच्च न्यायालय किसी दी गई स्थिति में, विशेष रूप से समय बीतने को ध्यान में रखते हुए अपनी विवेकाधीन अधिकारिता का प्रयोग कर सकता है या नहीं कर सकता है। कथित उद्देश्य के लिए, यह न केवल अभिलेख पर सामग्री पर अपना दिमाग लगाने की आवश्यकता थी, बल्कि यह भी विचार करने की आवश्यकता थी कि क्या इससे कोई उद्देश्य पूरा होगा.

57. इस मामले के विशिष्ट तथ्यों और परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए, हमारी राय है कि आक्षेपित निर्देश जारी करने से पहले, उच्च न्यायालय को अपीलार्थियों को इसमें सुनवाई का अवसर देना चाहिए था।

58. उपरोक्त कारणों से, आक्षेपित निर्णय को अपास्त किया जाता है और मामले पर नए सिरे से विचार करने के लिए उच्च न्यायालय को भेजा जाता है।उच्च न्यायालय इसमें भी अपीलार्थियों को और राज्य को नोटिस जारी करेगा और उचित आदेश पारित करेगा जो वह उचित और उचित समझे और कानून के अनुसार।अपीलों को उपरोक्त टिप्पणियों और निर्देशों के साथ अनुमति दी जाती है।"

(जोर दिया गया)

12. 4. विनुभाई हरिभाई मालवीय (उपर्युक्त) के मामले में इस न्यायालय के 3 न्यायाधीशों की पीठ के निर्णय को भी पक्षकारों के विद्वान वकील द्वारा उनकी संबंधित दलीलों के समर्थन में संदर्भित किया गया है. इसमें, इस न्यायालय ने उच्च न्यायालय के आक्षेपित निर्णय का अनुमोदन नहीं किया जहां तक यह कहा गया था कि संज्ञान के बाद, दंडाधिकारी को आगे की जांच का आदेश देने की शक्ति से वंचित कर दिया गया था.तथापि, इस न्यायालय ने मामले के मूल तथ्यों पर ध्यान दिया कि दिनांक 22.12.2009 की प्राथमिकी दो आपराधिक कार्यों से संबंधित थी, अर्थात्, प्रश्नगत कृषि भूमि के संबंध में नकली और फर्जी सताखात और मुख्तारनामा तैयार करना और अभियुक्त व्यक्तियों द्वारा धन उगाही के प्रयास के रूप में 2.5 करोड़ रुपये की राशि की मांग करना।यह भी देखा गया कि आगे की जांच के लिए आवेदन में कथित तथ्य आर एंड एस के पक्ष में की गई राजस्व प्रविष्टियों से संबंधित थे, और आरोप लगाया गया था कि कैसे उसी भूमि पर उनका दावा झूठा और फर्जी था.इस न्यायालय ने पाया कि अभिकथित तथ्य आगे की जांच के लिए आवेदन एक क्रॉस-एफआईआर की प्रकृति का था, जिसे कभी दर्ज नहीं किया गया था।इस संबंध में गुजरात के राजस्व आयुक्त द्वारा 15 मार्च, 2011 को सूरत के कलेक्टर को भेजे गए पत्र का भी उल्लेख किया गया। मामले की समग्र समझ में, और राजस्व आयुक्त, गुजरात के दिनांक १५. ०३. २०११ के कथित पत्र-व्यवहार को ध्यान में रखते हुए, इस न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि २२. १२. २००९ दिनांकित प्राथमिकी में अभिकथित तथ्यों की आगे जांच के लिए कोई मामला नहीं बनाया गया था.हालांकि, आयुक्त द्वारा कही गई बातों को ध्यान में रखते हुए, इस न्यायालय ने पुलिस को उन तथ्यों के आधार पर प्राथमिकी दर्ज करने का निर्देश दिया, जिसकी जांच एक वरिष्ठ पुलिस अधिकारी द्वारा की जानी चाहिए और इस न्यायालय ने पुलिस रिपोर्ट के आधार पर उचित कदम उठाने के लिए आगे के निर्देश जारी किए.इस निर्णय के दौरान, इस न्यायालय ने जांच और जांच के उद्देश्य से संबंधित सिद्धांत और दर्शन के साथ-साथ जांच और आगे की जांच के संबंध में पुलिस और मजिस्ट्रेट की शक्तियों की विस्तृत श्रृंखला पर भी प्रकाश डाला, अन्य बातों के साथ-साथ, निम्नलिखित अनुच्छेदों में:-

"18. यह स्पष्ट है कि एक निष्पक्ष सुनवाई तभी शुरू होनी चाहिए जब जांच अपने आप में निष्पक्ष और न्यायसंगत हो।सभी जांच और जांच का अंतिम उद्देश्य, चाहे वह पुलिस द्वारा हो या मजिस्ट्रेट द्वारा, यह सुनिश्चित करना है कि जिन लोगों ने वास्तव में

अपराध किया है, उन पर सही तरीके से मामला दर्ज किया जाए और जिन लोगों पर मुकदमा नहीं चलाया गया है, उन पर मुकदमा न चलाया जाए।यह न्यूनतम प्रक्रियात्मक आवश्यकता है जो भारत के संविधान के अनुच्छेद 21 की बुनियादी आवश्यकता है, इस पर संदेह नहीं किया जा सकता है।यह दंड प्रक्रिया संहिता पर अनुच्छेद 21 की सर्वव्यापकता है जिसे दं. प्र. सं. सभी प्रावधानों की व्याख्या को सूचित करने की आवश्यकता है, ताकि यह सुनिश्चित किया जा सके कि अनुच्छेद 21 का अक्षरशः और भावना से पालन किया जा रहा है।

* * * * * * * * * * * *

25. इस प्रकार यह स्पष्ट है कि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 156 (3) के अधीन मजिस्ट्रेट की शक्ति बहुत व्यापक है, क्योंकि यह इस न्यायिक प्राधिकारी का ही समाधान होना चाहिए कि पुलिस द्वारा उचित अन्वेषण होता है।यह सुनिश्चित करना कि पुलिस द्वारा निष्पक्ष और न्यायसंगत जांच के अर्थ में एक उचित जांच हो-जो ऐसा दंडाधिकारी हो भारत के संविधान के अनुच्छेद 21 में आदेश दिया गया है कि सभी आवश्यक शक्तियां, जो प्रासंगिक या अंतर्निहित भी हो सकती हैं, एक उचित जांच सुनिश्चित करने के लिए मजिस्ट्रेट को उपलब्ध हैं, जिसमें, निस्संदेह, धारा 173 (2) के तहत रिपोर्ट प्राप्त होने के बाद आगे की जांच का आदेश शामिल होगा और जो शक्ति ऐसे मजिस्ट्रेट को आपराधिक कार्यवाही के सभी चरणों में तब तक सुनिश्चित करेगी जब तक कि मुकदमा शुरू नहीं हो जाता है।वास्तव में, लिखित रूप में भी, दं. प्र. सं. धारा 156 (1) में संदर्भित जांच में, धारा 2 (एच) के तहत 'जांच' की परिभाषा के अनुसार, किसी पुलिस अधिकारी द्वारा किए गए साक्ष्य के संग्रह के लिए सभी कार्यवाहियां शामिल होंगी, जिसमें निश्चित रूप से दं. प्र. सं. धारा 173 (8) के तहत आगे की जांच के माध्यम से कार्यवाही शामिल होगी।

* * * * * * * * * * * *

42..... निष्पक्ष और न्यायसंगत अन्वेषण से यह निष्कर्ष निकलता है कि पुलिस धारा 173 (8) के अधीन मजिस्ट्रेट की अनुमति के अधीन रहते हुए आरोप विरचित होने तक किसी अपराध का आगे अन्वेषण करने की शक्ति रखती है, किंतु मजिस्ट्रेट की पर्यवेक्षी अधिकारिता विचारण-पूर्व कार्यवाहियों के बीच में अचानक समाप्त हो जाती है, यह न्याय का उपहास होगा, क्योंकि कुछ मामले आगे अन्वेषण के लिए पुकार सकते हैं जिससे कि किसी निर्दोष व्यक्ति को गलत तरीके से अभियुक्त न

बनाया जाए या प्रथमदृष्टया दोषी व्यक्ति इस प्रकार छूट न जाए।मजिस्ट्रेट की शक्तियों के इस तरह के संकीर्ण और प्रतिबंधात्मक दृष्टिकोण के लिए कोई वारंट नहीं है, विशेष रूप से जब ऐसी शक्तियां दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 156 (1), धारा 2 (एच) और धारा 173 (8) के साथ पठित हैं, जैसा कि इसमें ऊपर देखा गया है, और वास्तव में विचारण शुरू होने से पहले आपराधिक मामले की प्रगति के सभी चरणों में उपलब्ध होंगी।यह भी न्याय के हित में होगा कि प्रत्येक मामले के तथ्यों के आधार पर स्वयं मजिस्ट्रेट द्वारा इस शक्ति का प्रयोग किया जाए।आगे की जांच का आदेश दिया जाना चाहिए या नहीं, यह विद्वान मजिस्ट्रेट के विवेक के भीतर है जो प्रत्येक मामले के तथ्यों पर और कानून के अनुसार इस तरह के विवेक का उपयोग करेगा।उदाहरण के लिए, यदि नए तथ्य सामने आते हैं जो कतिपय व्यक्तियों को अंतर्विष्ट या दोषमुक्त करने के लिए प्रेरित करेंगे, सत्य पर पहुंचना और आपराधिक मामले में पर्याप्त न्याय करना, दांडिक कार्यवाही को समाप्त करने में और विलंब किए जाने से बचने से अधिक महत्वपूर्ण है.....।"

12.5 डिवाइन रिट्रीट केन्द्र (ऊपर) के मामले की अपनी एक विशेषता है। उसमें, 2005 की संख्या 381 वाला आपराधिक मामला एक महिला रिमांड कैदी द्वारा लगाए गए आरोपों पर कोराट्टी पुलिस स्टेशन में दर्ज किया गया था कि अपीलकर्ता-केन्द्र में शरण लेते समय, उसके साथ छेड़छाड़ और शोषण किया गया था और वह गर्भवती हो गई थी और उसके बाद, जब वह अपनी बहन की शादी में शामिल होने के लिए केन्द्र से बाहर आई थी। विवाह के बाद उसे एक झूठे चोरी के मामले में फंसाया गया और जेल में डाल दिया गया।इन कार्यवाहियों के समानांतर, उच्च न्यायालय में एक अनाम याचिका और अन्य याचिकाएं प्राप्त हुईं, जिन्हें स्वतः संज्ञान आपराधिक मामले के रूप में पंजीकृत किया गया था।उस मामले में, उच्च न्यायालय ने, दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के तहत शक्तियों का प्रयोग करते हुए, निर्देश दिया कि 2005 के उक्त आपराधिक मामला संख्या 381 को जांच अधिकारी से छीन लिया जाए और विशेष जांच दल ('एसआईटी') को सौंप दिया जाए।उच्च न्यायालय ने उक्त एसआईटी को अपीलकर्ता-केंद्र के खिलाफ दायर अनाम याचिका में लगाए गए अन्य आरोपों की जांच/जांच करने का भी निर्देश दिया।तथापि, इस न्यायालय ने उच्च न्यायालय द्वारा इस प्रकार पारित आदेश का अनुमोदन नहीं किया और उस संदर्भ में, यह कहते हुए कि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा ४८२ के तहत उच्च न्यायालय को कोई असीमित और मनमानी अधिकारिता प्रदान नहीं की गई थी, उन परिस्थितियों को स्पष्ट किया जिसके तहत अंतर्निहित अधिकारिता का प्रयोग किया जा सकता है और साथ ही जांच अधिकारियों के उत्तरदायित्वों को भी, अन्य बातों के साथ, निम्नलिखित शब्दों में समझायाः-

"27. हमारे विचार में, संहिता की धारा 482 के अधीन उच्च न्यायालय को प्रदत्त असीमित मनमानी अधिकारिता जैसा कुछ भी नहीं है।शक्ति का प्रयोग विरल रूप से,

सावधानी से और सावधानी के साथ तभी किया जाना चाहिए जब इस धारा में अधिकथित कसौटियों द्वारा ऐसा प्रयोग न्यायोचित हो।यह अच्छी तरह से निर्धारित है कि धारा 482 उच्च न्यायालय को कोई नई शक्ति प्रदान नहीं करती है, लेकिन केवल उस अंतर्निहित शक्ति को बचाती है जो संहिता के अधिनियमन से पहले न्यायालय के पास थी।तीन परिस्थितियां हैं जिनके तहत अंतर्निहित अधिकारिता का उपयोग किया जा सकता है, अर्थात् (i) किसी आदेश को कोई के तहत् प्रभावी बनाना (ii) न्यायालय की प्रक्रिया के दुरूपयोग को रोकना और (iii) अन्यथा न्याय दिलवाना।

* * * * * * * * * * * *

39. उपर्युक्त विचार-विमर्श और उपर्युक्त विधि के विश्लेषण का सारांश और सार हमें इस अप्रतिरोध्य निष्कर्ष पर पहुंचाता है कि किसी अपराध का अन्वेषण वह क्षेत्र है जो अनन्य रूप से उन पुलिस अधिकारियों के लिए आरक्षित है जिनकी उस क्षेत्र में शक्तियां तब तक अबाधित हैं जब तक कि संहिता के अध्याय 12 के अधीन उपबंधों के कठोर अनुपालन में संज्ञेय अपराधों की जांच करने की शक्ति का विधिपूर्ण रूप से प्रयोग किया जाता है।तथापि, हम यह जोड़ने में जल्दबाजी कर सकते हैं कि असीमित विवेकाधिकार का अर्थ कोई गैर-जवाबदेह या असीमित विवेकाधिकार नहीं है और अपनी पसंद के अनुसार कार्य करता है।जांच करने की शक्ति का प्रयोग सख्ती से उस शर्त पर किया जाना चाहिए जिसकी शक्ति स्वयं संहिता द्वारा प्रदान की गई है।

40. हमारे विचार में, उच्च न्यायालय अपनी अंतर्निहित अधिकारिता का प्रयोग करते हुए किसी भी आधार पर और विशेष रूप से नामित न्यायाधीश को संबोधित शिकायतों या गुमनाम याचिकाओं के आधार पर किसी अपराध की जांच करने के लिए अपनी पसंद के किसी भी एजेंसी को नियुक्त नहीं कर सकता है।ऐसे संदेशों को कानून को गति प्रदान करने के लिए स्वतः संज्ञान की कार्यवाही में परिवर्तित नहीं किया जा सकता है।न तो अभियुक्त और न ही शिकायतकर्ता या मुखबिर को किसी ऐसे अपराध की जांच के लिए अपनी जांच एजेंसी चुनने का अधिकार है जिसमें उनका हित हो सकता है।

41. यह बिल्कुल भिन्न विषय है कि उच्च न्यायालय भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के अधीन अपनी शक्ति का प्रयोग करते हुए किसी व्यथित व्यक्ति के कहने पर सदैव समुचित निदेश जारी कर सकता है यदि उच्च न्यायालय इस बात से आश्वस्त है कि अन्वेषण की शक्ति का प्रयोग किसी अन्वे-क अधिकारी द्वारा दुर्भावनापूर्ण रूप से

किया गया है।उस शक्ति का प्रयोग विरले मामलों में से विरलतम मामले में किया जाना चाहिए जहां संहिता के अध्याय 12 के अंतर्गत आने वाले उपबंधों का अनुपालन न करने और शक्ति के दुरुपयोग का स्पष्ट मामला स्पष्ट रूप से उच्च न्यायालय के हस्तक्षेप की अपेक्षा करता है।लेकिन ऐसे मामलों में भी उच्च न्यायालय पुलिस को यह निर्देश नहीं दे सकता कि जांच कैसे की जाए, लेकिन वह हमेशा प्रक्रिया के पालन पर जोर दे सकता है जैसा कि संहिता में प्रावधान किया गया है।"

(जोर दिया गया)

12. 6.मदन मोहन (पूर्वोक्त) के मामले में, इस न्यायालय ने निश्चित रूप से स्थापित सिद्धांतों को दोहराया कि कोई भी वरिष्ठ न्यायालय किसी विशेष आदेश को पारित करने के लिए किसी भी अधीनस्थ न्यायालय को कोई निर्देश/परमादेश जारी नहीं कर सकता है, लेकिन, प्रश्न किए गए निर्देश जमानत आवेदन से निपटने के संबंध में थे, जिन्हें इस न्यायालय द्वारा अन्य बातों के साथ-साथ निम्नलिखित रूप में यह कहते हुए अनुमोदित नहीं किया गयाः- -

"15. हमारी सुविचारित राय में, उच्च न्यायालय को जमानत की मंजूरी के लिए आवेदन की 'अनुज्ञा' देने के लिए सेशन न्यायाधीश को निदेश देने की कोई अधिकारिता नहीं थी।वास्तव में, एक बार उच्च न्यायालय द्वारा ऐसा निर्देश जारी कर दिया गया था, तो उच्च न्यायालय के निर्देशों का पालन करने और प्रत्यर्थियों को जमानत देने के अलावा सत्र न्यायाधीश के लिए क्या बचा था।दूसरे शब्दों में, उच्च न्यायालय द्वारा जारी किए गए अनिवार्य निदेशों के अनुपालन में, सेशन न्यायाधीश के पास जमानत आवेदन को खारिज करने का कोई अधिकार नहीं था, बल्कि इसे मंजूर करना था।

16. पदानुक्रमित क्षेत्राधिकार में कोई भी वरिष्ठ न्यायालय किसी भी पक्ष द्वारा दायर किसी आवेदन पर विशेष आदेश पारित करने के लिए किसी अधीनस्थ न्यायालय को ऐसा निर्देश/परमादेश जारी नहीं कर सकता है।मामलों में आदेश पारित करने में प्रत्येक न्यायालय की न्यायिक स्वतंत्रता अच्छी तरह से स्थापित है।इसमें वरिष्ठ न्यायालय सहित किसी भी न्यायालय द्वारा हस्तक्षेप नहीं किया जा सकता है।"

12. 7. नीतू कुमार नगाइच (पूर्वोक्त) के मामले में, इस न्यायालय ने विधि के एक छात्र की अप्राकृतिक मृत्यु के संबंध में नए सिरे से जांच के लिए निर्देश जारी किए। हमें इस तथ्य के लिए कथित निर्णय पर विस्तार से बताने की आवश्यकता नहीं है कि इस तरह के निर्देश इस न्यायालय के रिट क्षेत्राधिकार के तहत जारी किए गए थे.

13. इसमें इसके पूर्व जो कुछ देखा गया है उसके लिए, हम वर्तमान मामले में लागू करने के लिए युक्तियुक्त रूप से निम्नलिखित सिद्धांतों को निकाल सकते हैंः

(क) दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की स्कीम निष्पक्ष विचारण सुनिश्चित करने के लिए है और यह निष्पक्ष और न्यायसंगत अन्वेषण के पश्चात् ही आरंभ होगी।प्रत्येक जांच और जांच का अंतिम उद्देश्य, चाहे वह पुलिस द्वारा हो या मजिस्ट्रेट द्वारा, यह सुनिश्चित करना है कि अपराध के वास्तविक अपराधियों पर सही तरीके से मामला दर्ज किया जाए और निर्दोषों पर मुकदमा न चलाया जाए।

(ख) दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 156 के संदर्भ में उचित जांच सुनिश्चित करने के लिए मजिस्ट्रेट की शक्तियों को मान्यता दी गई है, जिसमें जांच की रिपोर्ट प्राप्त होने के बाद दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 173 (8) के संदर्भ में आगे जांच का आदेश देने की शक्ति शामिल है।क्या आगे की जांच का आदेश मजिस्ट्रेट के विवेकाधिकार के भीतर होना चाहिए या नहीं होना चाहिए, जिसका उपयोग प्रत्येक मामले के तथ्यों और कानून के अनुसार किया जाना चाहिए।

(ग) ऐसे मामले में जहां आरोप पत्र दाखिल किया गया है, आगे अन्वेषण का निदेश देने की मूल शक्ति मजिस्ट्रेट के पास है और उसका प्रयोग किसी समुचित मामले में दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 173 (8) की सीमाओं के अधीन किया जाना है, जहां उच्च न्यायालय यह महसूस करता है कि अन्वेषण उचित निदेश में नहीं है और जहां मामले के तथ्य इस प्रकार मांग करते हैं, वहां दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के अधीन अंतर्निहित शक्तियों का प्रयोग आगे अन्वेषण या पुनः अन्वेषण का निदेश देने के लिए किया जा सकता है।दं. प्र. सं. धारा 173 (8) के प्रावधान आगे की जांच या पुनः जांच के लिए दं. प्र. सं. धारा 482 के तहत आदेश पारित करने के लिए उच्च न्यायालय की शक्तियों को सीमित या प्रभावित नहीं करते हैं, यदि उच्च न्यायालय संतुष्ट है कि न्याय के उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए इस तरह का पाठ्यक्रम आवश्यक है।

(घ) यहां तक कि जब दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के संदर्भ में उच्च न्यायालय की व्यापक शक्तियों को आगे की जांच या फिर से जांच का आदेश देने के लिए मान्यता दी जाती है, तो ऐसी शक्तियों का उपयोग सतर्कता के साथ और असाधारण मामलों में किया जाना चाहिए।

(ङ) दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के अधीन शक्तियां असीमित या अनियंत्रित नहीं हैं और अनिवार्य रूप से वास्तविक और सारवान न्याय के प्रयोजन के लिए हैं।ऐसी शक्तियों का प्रयोग करते हुए, उच्च न्यायालय अन्य प्राधिकारियों की शक्ति और अधिकारिता पर प्रभाव डालने वाले निदेश जारी नहीं कर सकता है। उदाहरण के लिए, उच्च न्यायालय निम्नलिखित को निदेश जारी नहीं कर सकता हैः

33 राज्य को आगे अन्वेषण या पुनः अन्वेषण का आदेश देते समय विधि के किस उपबंध के अधीन किसी व्यक्ति पर आरोप लगाया जाना है और उसका विचारण किया जाना है, इस बारे में राज्य लोक अभियोजक से सलाह लेनी चाहिए और वह केवल एक विशिष्ट दृष्टिकोण से मामले की जांच करने के लिए निदेश जारी नहीं कर सकता है।असाधारण परिस्थितियों में ऐसी अंतर्निहित शक्तियों का प्रयोग करते हुए, उच्च न्यायालय विशेष रूप से यह निर्देश नहीं दे सकता है कि आगे की जांच या पुनः जांच के परिणामस्वरूप, किसी विशेष व्यक्ति पर मुकदमा चलाया जाए।

14. वर्तमान मामले के तथ्यों पर पूर्वोक्त सिद्धांतों को लागू करते हुए, हम पाते हैं कि, निगम के गोदाम से माल की गडबडी और स्टॉक के दुर्विनियोजन के आरोपों के संबंध में, वह व्यक्ति जो ऑडिट रिपोर्ट के संदर्भ में प्राथमिकी दर्ज करता है, अर्थात्, वरिष्ठ डिप्टी कलेक्टर-सह-जिला प्रबंधक, ने केवल प्रत्यर्थी संख्या 3 के खिलाफ आरोप लगाए, जो निगम का चतुर्थ श्रेणी कर्मचारी था, लेकिन अपीलार्थी द्वारा, जो प्रासंगिक समय पर जिला प्रबंधक का पद धारण कर रहा था, उसे कथित रूप से प्रभारी सहायक गोदाम प्रबंधक के रूप में तैनात किया गया था।हालांकि ऑडिट रिपोर्ट में प्रासंगिक समय में कार्रवाई और चूक की कई विशेषताओं का उल्लेख किया गया है, लेकिन हम इसे विस्तार देने का प्रस्ताव नहीं करते हैं।वर्तमान प्रयोजन के लिए यह कहना पर्याप्त है कि जब प्रत्यर्थी नं. ३ द्वारा दायर याचिका में उच्च न्यायालय के समक्ष सभी प्रासंगिक पहलुओं को विधिवत प्रस्तुत किया गया था, तो उच्च न्यायालय केवल उन कारणों से उनकी उपेक्षा नहीं कर सकता था कि सूचना देने वाले ने एफआईआर दर्ज करते समय उन्हें बताया और/या जांच अधिकारी ने परिणाम प्रस्तुत करते समय उनकी अनदेखी की. जाँच, और/या विद्वान मजिस्ट्रेट ने संज्ञान लेते समय उन पर अपेक्षित ध्यान नहीं दिया।

14. 1.तथ्यों और परिस्थितियों के दिए गए सेट में, हम संतुष्ट हैं कि वर्तमान वाला असाधारण और विशेष विशेषताओं का ऐसा मामला था जहां उच्च न्यायालय आगे की जांच का आदेश देने में उचित था, विशेष रूप से अपीलकर्ता की भूमिका।इस प्रकार, हमारे विचार में, आगे की जांच का निर्देश देते हुए, आदेश का प्रमुख भाग किसी हस्तक्षेप की मांग नहीं करता है।[12]

15. तथापि, आक्षेपित आदेश के कुछ अन्य पहलू और विशेषताएं हैं जिनकी सराहना और अनुमोदन करना कठिन है।उच्च न्यायालय ने आक्षेपित आदेश में इस तरह की कठोर और गंभीर अभिव्यक्तियों का उपयोग करने का विकल्प चुना है जो अपीलार्थी के लिए पूर्वाग्रह पैदा करने और यहां तक कि एक निष्पक्ष और निष्पक्ष जांच को विचलित करने की सभी क्षमता रखते हैं.जैसा कि देखा गया है, उच्च न्यायालय ने अपनी टिप्पणी की है कि 'पूरा खेल' अपीलकर्ता द्वारा खेला गया था जो जिला प्रबंधक के पद पर था।उच्च न्यायालय

12यह देखा जा सकता है कि 10.09.2018 के आक्षेपित आदेश में, उच्च न्यायालय ने अपेक्षित कार्रवाई के बारे में तीन अलग-अलग अभिव्यक्तियों का उपयोग किया है जहां मजिस्ट्रेट ने कार्रवाई की है. आयोग ने 'पुलिस को आगे फिर से जांच करने के लिए निर्देश देने' और 'पुलिस को फिर से जांच पूरी करने का निर्देश देने' और 'आगे आने वाली सामग्रियों पर विचार करने के लिए भी' निर्देश देने का निर्देश दिया है। हालांकि, यह स्पष्ट है कि मामले के सार पर, विशेष रूप से अपीलार्थी की भूमिका के संबंध में, मामले में 'आगे की जांच' सुनिश्चित करने के लिए निर्देश हैं.

ने यह भी कहा है कि अपीलकर्ता 'अंततः' ऐसी सभी अनियमितताओं के लिए जिम्मेदार है। उच्च न्यायालय इस सीमा तक देखती है कि प्रत्यर्थी नं. ३ को अपीलार्थी को बचाने के लिए 'बलि का बकरा' के रूप में मामले में अभियुक्त बनाया गया था.ये और आदेश में इसी तरह की अन्य टिप्पणियां इस स्थिति को जन्म देती हैं जैसे कि उच्च न्यायालय ने पहले ही जांच के परिणाम पर निष्कर्ष निकाल लिया हो। अपीलार्थी किसी दिए गए मामले से संबंधित आपवादिक परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए ऐसा करने की आवश्यकता के बारे में प्रथम दृष्टया संतुष्ट होने पर आगे की जांच का आदेश देना पूरी तरह से एक अलग मामला है, लेकिन, अंतर्निहित शक्तियों का उपयोग करते हुए, उच्च न्यायालय को ऐसी टिप्पणियां और टिप्पणियां करने में न्यायोचित नहीं ठहराया गया है जो जांच के ऊपर और ऊपर काम कर सकती हैं और अपीलकर्ता पर प्रतिकूल प्रभाव डाल सकती हैं.जैसा कि देखा गया है, यह सिद्धांत तय है कि उच्च न्यायालय एक विशेष दृष्टिकोण से मामले की जांच करने के लिए निर्देश जारी नहीं कर सकता है।

16. इस प्रकार, हमारा विचार है कि तथ्यों और परिस्थितियों के दिए गए सेट में, हालांकि उच्च न्यायालय ने आगे की जांच का निर्देश देने के लिए दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के तहत अपनी शक्तियों का सही उपयोग किया है, लेकिन, इस तरह की अवलोकनों, आलोचनाएँ और टिप्पणियां करना उचित नहीं है, जो एक स्वतंत्रता जांच के लिए बहुत कम गुंजाइश छोड़ती हैं और जो अपीलार्थी के लिए प्रतिकूल प्रभाव डालने की सभी क्षमता रखती हैं।इस अपील में पहले सवाल का जवाब तदनुसार दिया गया है।

17. दूसरे प्रश्न का उल्लेख करते हुए, अर्थात् इस बारे में कि क्या उच्च न्यायालय अपीलार्थी को सुनवाई का अवसर प्रदान किए बिना आक्षेपित आदेश पारित करने में न्यायोचित था, हम इस संबंध में उद्धृत कुछ सुसंगत विनिश्चयों का उल्लेख कर सकते हैं।

17. 1 मनहरीभाई मुलजीभाई काकड़िया (ऊपर) का मामला दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 203 के तहत किसी शिकायत को खारिज करने के बाद उच्च न्यायालय द्वारा पुनरीक्षण की शक्तियों के उपयोग के बारे में था। शिकायत को पुनरीक्षण न्यायालय के समक्ष सुनवाई का अधिकार प्राप्त है, जैसा कि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 401 (2) में अभिव्यक्त रूप से उपबंधित है।इस न्यायालय ने अन्य बातों के साथ-साथ निम्नलिखित कहा हैः- -

> "53.....हम यह अभिनिर्धारित करते हैं, जैसा कि यह होना चाहिए कि शिकायतकर्ता द्वारा उच्च न्यायालय या सेशन न्यायाधीश के समक्ष प्रस्तुत की गई पुनरीक्षण याचिका में दंडाधिकारी के उस आदेश को चुनौती दी गई है जिसमें धारा 200 के अधीन प्रक्रम पर संहिता की धारा 203 के अधीन शिकायत को खारिज कर दिया गया है या संहिता की धारा 202 के अधीन अनुध्यात प्रक्रिया का पालन करने के पश्चात्, अभियुक्त या ऐसा व्यक्ति जिसके अपराध करने का संदेह है, पुनरीक्षण न्यायालय द्वारा

सुनवाई का हकदार है।दूसरे शब्दों में, जहां शिकायत संहिता की धारा 203 के अधीन दंडाधिकारी द्वारा खारिज कर दी गई है, वहां शिकायतकर्ता द्वारा उच्च न्यायालय या सत्र न्यायाधीश के समक्ष पुनरीक्षण याचिका में रखे गए कथित आदेश की वैधता को चुनौती देने पर, शिकायत में अभियुक्त के रूप में आरोपित व्यक्तियों को ऐसी पुनरीक्षण याचिका में सुनवाई का अधिकार है।यह संहिता की धारा 401 (2) की एक सरल आवश्यकता है।यदि पुनरीक्षण न्यायालय शिकायत को खारिज करने वाले मजिस्ट्रेट के आदेश को पलट देता है और शिकायत को दंडाधिकारी की फाइल में बहाल कर दिया जाता है और उसे नए सिरे से विचार के लिए वापस भेज दिया जाता है, तो शिकायत में जिन लोगों पर अपराध करने का आरोप लगाया गया है, उन्हें कार्यवाही में भाग लेने का कोई अधिकार नहीं है और न ही वे प्रक्रिया जारी करने के लिए दंडाधिकारी द्वारा मामले पर विचार किए जाने तक किसी भी प्रकार की सुनवाई के हकदार हैं।हम इस सवाल का जवाब उसी के अनुसार देते हैं।इसके विपरीत उच्च न्यायालयों के निर्णयों को उलट दिया जाता है।"

(जोर दिया गया)

17.2.डब्ल्यू. एन. चड्ढा (उपर्युक्त) के मामले की रूपरेखा और पृष्ठभूमि तथा उसमें अंतर्वलित प्रश्न उनकी अपनी विशिष्टताओं से संबंधित थे।वर्तमान प्रयोजन के लिए, यह ध्यान में रखना पर्याप्त होगा कि अन्वेषण की प्रक्रिया और रीति के संबंध में, जिसमें रोगेटरी के पत्र से संबंधित मुद्दे शामिल थे, इस न्यायालय ने, अन्य बातों के साथ-साथ, जांच के स्तर पर किसी अभियुक्त के संबंध में औडी आल्टरटम के सिद्धांत को निम्नलिखित शब्दों में अपवर्जित करने की ओर इंगित किया:-

"80. औदी आल्टरटम का नियम न्याय का नियम है और इसके लागू होने को वहां अपवर्जित कर दिया गया है जहां यह नियम स्वयं अन्याय का कारण बनेगा। एस ए डी स्मिथ जुडिशियल रिव्यू आफ एडमिनिस्ट्रेटिव एक्शन, (चौथा संस्करण) पृष्ठ 184 पर, में यह कहा गया है कि प्रशासनिक कानून में, पूर्व सूचना और सुनवाई के अवसर के प्रथम दृष्टया अधिकार को कुछ कारकों की उपस्थिति में, एकल रूप से या अन्य के संयोजन में, अपवर्जित माना जा सकता है।"उन विशेष कारकों का उल्लेख आइटम (1) से (10) के तहत" "औडी आल्टरटम नियम का अपवर्जन" शीर्षक के तहत किया गया है।"

81. इस प्रकार, ऐसे मामलों में जहां किसी मामले को प्रस्तुत करने और पूरा करने का अवसर न देकर कोई अनुचित निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता है, औडी

आल्टरटम नियम के लागू होने का अपवर्जन किया गया है।इस नियम को न्याय के उद्देश्यों को विफल करने या कानून को निर्जीव, बेतुका, अनुचित और आत्म-पराजय करने या स्पष्ट रूप से स्थिति की सामान्य समझ के विपरीत बनाने के लिए लागू नहीं किया जा सकता है और इस नियम को बहुत ही असाधारण परिस्थितियों में हटाया जा सकता है जहां बाध्यकारी आवश्यकता होती है।

* * * * * * * * * * * *

89. उपर्युक्त सिद्धांत को लागू करते हुए, यह अभिनिर्धारित किया जा सकता है कि जब अन्वेषण अधिकारी यह सुनिश्चित करने के लिए सामग्री एकत्र करने के सिवाय किसी मामले का विनिश्चय नहीं कर रहा है कि क्या प्रथमदृष्टया मामला बनता है या नहीं और रिपोर्ट के फाइल किए जाने के अनुसरण में न्यायालय या अधिकरण के समक्ष विचारण में धारा 173 (2) के अधीन रिपोर्ट फाइल करने के मामले में पूर्ण जांच की जाती है, तो यह नहीं कहा जा सकता है कि उस स्तर पर औदी परिवर्तन अंश पूर्व सूचना जारी करने और अभियुक्त की सुनवाई करने की बाध्यता को अधिरोपित करता है, जिसे कानून स्पष्ट रूप से मान्यता नहीं देता है।सवाल यह नहीं है कि क्या औडी आल्टरटम अंतर्निहित है, बल्कि यह है कि क्या इसके आकर्षण का अवसर मौजूद है।

90. दंड प्रक्रिया संहिता के अध्याय 12 की स्कीम के अधीन ऐसे विभिन्न उपबंध हैं जिनके अधीन पुलिस अधिकारी द्वारा अन्वेषण के चरण में कार्यवाही के दौरान किसी अभियुक्त व्यक्ति को कोई पूर्व सूचना या सुनवाई का अवसर प्रदान नहीं किया जाता है।

* * * * * * * * * * * *

92. इसके अतिरिक्त, अभियुक्त को अन्वेषण के तरीके और पद्धति के बारे में कोई अधिकार नहीं है।संहिता की पूरी योजना के तहत कुछ अपवादों को छोड़कर, किसी पुलिस रिपोर्ट पर संस्थित किसी मामले की जांच के दौरान आरोपी की अधिकार के रूप में कोई भागीदारी नहीं है, जब तक कि जांच संहिता की धारा 173 (2) के तहत अंतिम रिपोर्ट दाखिल करने में या संहिता की धारा 204 के तहत प्रक्रिया जारी होने तक अन्यथा संस्थित किसी कार्यवाही में, जैसा भी मामला हो, समाप्त नहीं हो जाती है।ऐसे मामलों में भी जहां किसी शिकायत पर किसी अपराध का संज्ञान इस बात के होते हुए भी लिया जाता है कि उक्त अपराध मजिस्ट्रेट द्वारा विचारणीय है या विशेष

रूप से सेशन न्यायालय द्वारा विचारणीय है, अभियुक्त को प्रक्रिया जारी होने तक भाग लेने का कोई अधिकार नहीं है।यदि संहिता की धारा 202 के तहत प्रक्रिया के मुद्दे को स्थगित कर दिया जाता है, तो आरोपी बाद की जांच में शामिल हो सकता है, लेकिन भाग नहीं ले सकता है।इस आशय के विभिन्न न्यायिक निर्णय हैं लेकिन हम महसूस करते हैं कि उन निर्णयों को दोहराना आवश्यक नहीं है।साथ ही, हम यह भी बताना चाहते हैं कि इस संहिता के तहत कुछ प्रावधान हैं जो दंडाधिकारी को कतिपय विनिर्दिष्ट परिस्थितियों में सुनवाई का अवसर प्रदान करते हैं।"

(जोर दिया गया)

17.3 यह भी उपयोगी रूप से पुनः उल्लेख किया जा सकता है कि पॉपुलर मुथैया (उपर्युक्त) के मामले में, कार्यवाहियों की प्रकृति की परवाह किए बिना उच्च न्यायालय द्वारा अंतर्निहित शक्तियों के प्रयोग का अननुमोदन न करने पर भी (निश्चित रूप से, शक्तियों के ऐसे प्रयोग की सीमाओं को अधिकथित करते हुए), इस न्यायालय ने यह भी कहा कि मामले की विशिष्ट परिस्थितियों में, जहां उन व्यक्तियों के खिलाफ जांच का आदेश दिया जा रहा था जिनके खिलाफ पहले जांच नहीं की गई थी, उच्च न्यायालय को उन्हें आक्षेपित निर्देश जारी करने से पहले सुनवाई का अवसर देना चाहिए था।इस प्रकार, आक्षेपित निर्णय को रद्द कर दिया गया और मामले को अपीलार्थियों को और राज्य को भी नोटिस देने के बाद नए सिरे से विचार करने के लिए उच्च न्यायालय को भेज दिया गया.

18. उपर्युक्त सिद्धांतों के समुचित अनुप्रयोग में, हमारा स्पष्ट मत है कि भले ही डब्ल्यू. एन. चड्ढा (पूर्वोक्त) के निर्णय का वर्तमान मामले में कोई प्रत्यक्ष लागू नहीं होगा, लेकिन फिर, सुनवाई के अवसर से संबंधित अवलोकन, जैसा कि मनहरीभाई मूलजीभाई ककाडिया (ऊपर) में हुआ है, भी अपीलार्थी के लाभ के लिए सुनिश्चित नहीं है क्योंकि उसमें, उच्च न्यायालय के समक्ष मामला दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 401 द्वारा शासित एक पुनरीक्षण याचिका था और उसकी उपधारा (2) के आधार पर, प्रभावित पक्षकार को सुनवाई का अवसर था। अभी भी एक वैधानिक अधिदेश है।[13] पॉपुलर मुथैया (पूर्वोक्त) में, निश्चित रूप से, इस न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि उक्त अपीलकर्ता, जिसके खिलाफ उच्च न्यायालय जांच के लिए निर्देश जारी कर रहा था, को सुनवाई का अवसर दिया जाना चाहिए था, लेकिन, मामले की अद्वितीय और अजीब परिस्थितियों में यह अवलोकन किया गया था जहां प्रश्नगत अपराध पहले से ही एक दौर के परीक्षण से गुजर चुका था, जिसमें एक व्यक्ति पर मुकदमा चलाया गया था और उसे दोषी ठहराया गया था।इसके अलावा, अपीलकर्ता के अभियोजन के संबंध में उच्च न्यायालय के अवांछित निर्देशों को अस्वीकार करते हुए, इस न्यायालय ने यह भी संकेत दिया कि उच्च न्यायालय को इस पर विचार करना चाहिए था कि क्या उसके

13दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 401 उच्च न्यायालय की व्यापक पुनरीक्षण शक्तियों का उपबंध करती है और इसकी उप-धारा (2) निम्नानुसार है:- "इस धारा के अधीन अभियुक्त या अन्य व्यक्ति के प्रतिकूल कोई आदेश तब तक नहीं किया जाएगा जब तक कि उसे व्यक्तिगत रूप से या अपनी प्रतिरक्षा में अभिवक्ता द्वारा सुने जाने का अवसर न मिला हो।"

निर्देशों से कोई उद्देश्य पूरा होगा.यह नहीं कहा जा सकता कि पॉपुलर मुथैया में, इस न्यायालय ने सार्वभौमिक आवेदन का एक नियम निर्धारित किया है कि आगे की जांच के लिए सीआरपीसी की धारा 482 के तहत शक्तियों के इस तरह के प्रत्येक मामले में (जो अन्यथा कम से कम और असाधारण मामलों में लागू किया जा सकता है), न्यायालय उस व्यक्ति को सुनवाई का अवसर देने के लिए बाध्य है जिसके कार्यों/चूक की जांच की जानी है।हमारे विचार में, ऐसे मामलों में सुनवाई के अवसर का प्रश्न हमेशा मामले के तथ्यों और परिस्थितियों के दिए गए सेट पर निर्भर करेगा।

19. तथ्यों पर और वर्तमान मामले की परिस्थितियों में, हमारा स्पष्ट मत है कि निम्नलिखित को अपनाने से कोई उद्देश्य पूरा नहीं होगा। पॉपुलर मुथैया (उपर्युक्त) का अनुक्रम, जहां इस न्यायालय ने इस मामले को उच्च न्यायालय के पुनर्विचार के लिए अपीलार्थी को सुनवाई के अवसर के साथ बहाल किया.वर्तमान मामले की कुछ प्रमुख और अजीब परिस्थितियां हैं कि आरोपों और आरोपों की उत्पत्ति विभागीय अनुदेशों और लेखा परीक्षा रिपोर्ट के रूप में दस्तावेजी साक्ष्य के रूप में हुई है, यह तथ्य कि अपीलार्थी प्रासंगिक समय पर जिला प्रबंधक का पद धारण कर रहा था, विवाद में नहीं है और इसमें इसके पहले, हमने अपीलार्थी की भूमिका की आगे की जांच का निर्देश देने में उच्च न्यायालय द्वारा निहित शक्तियों के प्रयोग को बरकरार रखा है.

19. 1.हमने उन प्रस्तुतियों पर भी ध्यान दिया है कि अपीलार्थी के अनुसार, उसे विस्तृत विभागीय कार्यवाही के बाद सभी आरोपों से पहले ही बरी कर दिया गया था और इस तरह का एक तथ्य उसे नोटिस के अभाव में उच्च न्यायालय के समक्ष पेश नहीं हुआ था.वर्तमान प्रयोजन के लिए, यह कहना पर्याप्त होगा कि भले ही अपीलार्थी को विभागीय कार्यवाहियों में दोषमुक्त कर दिया गया हो, ऐसा तथ्य अपने आप में आपराधिक जांच का निश्चायक नहीं हो सकता है और अकेले इस तथ्य के लिए, उच्च न्यायालय मामले की सभी अन्य विशेषताओं और उसके समक्ष उभरे तात्विक कारकों की उपेक्षा नहीं कर सकता था.

20. इस मोड़ पर, और इस चर्चा के अंतिम खंड में, यह भी देखा जा सकता है कि हमने इस मामले से जुड़ी एक और विशिष्ट विशेषता पर ध्यान दिया है कि वर्तमान अपील की विषय-वस्तु के अलावा, 2012 का बाढ़ थाना मामला संख्या 115 भी था। एक अन्य मामला, प्रत्यर्थी ३ और वर्तमान अपीलकर्ता के खिलाफ भी, माल के दुर्विनियोजन के समान आरोपों से संबंधित 2012 का मामला नं. १२९ है.राज्य की ओर से की गई प्रस्तुतियों के अनुसार, भारतीय दंड संहिता की धारा 409,420,468,471 और 474 के तहत अपराधों के लिए संस्थित 2012 के उक्त बिक्रम थाना केस नंबर 129 में, वर्तमान अपीलकर्ता के खिलाफ प्रथम दृष्टया मामला मिलने के बाद, अभियोजन की मंजूरी भी प्राप्त कर ली गई है और उच्च न्यायालय द्वारा पारित आदेश के बाद, वर्तमान मामले में जांच भी 2012 के उपरोक्त विक्रम थाना केस नंबर 129 के साथ की गई थी।राज्य की ओर से दाखिल हलफनामे के अनुसार, प्रथम दृष्टया अपीलकर्ता की मिलीभगत पाई गई है, लेकिन, इस मामले में, इस न्यायालय द्वारा अपीलकर्ता को अंतरिम संरक्षण दिए जाने के लिए अभियोजन की मंजूरी प्राप्त नहीं की गई है.

20. 1.हम यह देखने में जल्दबाजी करेंगे कि राज्य की ओर से उपर्युक्त प्रस्तुतियों पर केवल उसकी योग्यताओं पर घोषणा किए बिना ध्यान दिया गया है और संबंधित जांच एजेंसी, मंजूरी देने वाले प्राधिकारी और उपयुक्त स्तर पर और उपयुक्त तरीके से न्यायालय की जांच और विचार के लिए हर पहलू खुला रखते हुए। इन प्रस्तुतियों को केवल यह इंगित करने के लिए संदर्भित किया गया है कि किसी भी दृष्टिकोण से देखा जाए तो उच्च न्यायालय के पुनर्विचार के लिए मामले को बहाल करने का कोई न्यायोचित और मजबूत कारण प्रतीत नहीं होता है।

21. परिस्थितियों की समग्रता में और न्याय के व्यापक हित में, हमारा स्पष्ट मत है कि इस मामले में, अन्वेषण पर विचार किया गया. आक्षेपित आदेश को अपने तार्किक अंत तक ले जाने की अनुमति दी जानी चाहिए, लेकिन उच्च न्यायालय[14] की अवांछित और अनावश्यक टिप्पणियों को समाप्त करते हुए, ऐसा न हो कि केवल ऐसे टिप्पणियों के कारण किसी भी पक्षकार पर कोई प्रतिकूल प्रभाव पड़े।दूसरे शब्दों में, पूरे मामले को जांच एजेंसी, मंजूरी देने वाले प्राधिकारी और संबंधित न्यायालय द्वारा प्रासंगिक स्तर पर और कानून के अनुसार जांच के लिए खुला छोड़ दिया जाता है।

22. तदनुसार और उपरोक्त को ध्यान में रखते हुए, यह अपील विफल हो जाती है और इसलिए, खारिज कर दी जाती है, लेकिन, पूर्वगामी टिप्पणियों के साथ और आक्षेपित आदेश में उच्च न्यायालय की अवांछित और अनावश्यक टिप्पणियों को समाप्त करते हुए।

(दिनेश माहेश्वरी, न्यायमूर्ति)

(अनिरुद्ध बोस, न्यायमूर्ति)

नई दिल्ली

12 अक्टूबर, 2022

14जैसा कि इसमें इसके पूर्व पैरा '15' में चर्चा की गई है।